

॥ ॐ नमोऽहंय ॥

विकास की ओर

— प्रवचन —

ध्याख्यान-भारती जैन कोकिला

विश्व प्रेम-अचारिका

आर्यारत्न,

साध्वी श्री विचक्षणभी जी

— सम्पादक —

शान्त प्रकाश "सत्यदास"

[बाध्यतीर्थ-राष्ट्रभाषा पण्डित]

प्रकाशक —

सुर सागर स्वर्ण भट्टार
धीकानेर

❶ सस्करण — प्रथम

❷ प्रतियाँ — १५००

❸ दिनांक — अगस्त १९६३ ई०

❹ सफलन — साध्वी श्री विनीताश्री जी

❺ मूल्य — ६० नये पैसे

मुद्रक

श्री परशुराम सिंह

अशोक आर्ट प्रेस

४६, शिवठाकुर लेन,

कलकत्ता-७

विश्व के समस्त
धर्म जिज्ञासुओंकी
पवित्र सेवामें
समर्पित



कहाँ क्या है ?

अनुक्रम	विषय	पृष्ठांक
१—	धर्म है क्या चीज ?	१
२—	प्रमाद छोड़िये	६
३—	भेदविज्ञान	१६
४—	क्षणभंगुरता	२६
५—	विचारकता	३८
६—	सदाचार	४६
७—	अनासक्ति	६०
८—	संगठनका महत्त्व	७३
९—	चार भावनाएँ	८३

सम्पादक की कलम से

यों तो पिछले दस वर्षों से मैं साधु साधियोंके प्रवचनोंका सम्पादन करना आ रहा हूँ परन्तु इस पुस्तकके रूपमें आर्यात्न श्रीविचित्रपथी श्री म० सा० कं प्रवचनों के सम्पादनका मुझे पहली ही बार स्वर्णवसर प्राप्त हुआ जिसे मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ ।

जहाँ तक मैं समझ सका हूँ सङ्कुचित और अनुदारता से आर्याजी सरन नफरत करती हैं । मानवता समन्वय और सगठन पर आप सबसे अधिक जोर देती हैं । आप चाहती हैं कि विश्वकी जनता विनाशकी ओर से मुँह मोड़ कर विकासकी ओर चले—प्रगतिके पथपर कदम रखे । विशेषकर आपका हाथमें है ही । पढ़ लेनेपर आप अपने आप सारी विचार धारा भली भाँति समझ सकेंगे ।

निम्बाहेड़ा (राजस्थान) में दिये गये छ सावजनिक प्रवचनोंके मासिको विषयानुसार नौ प्रकरणोंमें विमल करके व्यवस्थितरूपसे सम्पादन करा का प्रयास किया गया है । भाव आर्याजीके हैं भाषा मेरी है ।

चूँकि जन साधु साधियों की भाषा काफी सरल होती है इसलिए ध्यान रखने पर भी यदि कहीं सावध भाषाका भ्रूज से प्रयोग हो गया हो, तो इसे मरी हो भ्रुति समझी जाए, प्रवचनकर्त्रीकी नहीं ।



१—धर्म है क्या चीज़ ?

धम-प्रेमियो !

प्रामाण्यम विहार करते हुए क्षेत्रस्पर्शना वश आज मुझ यहाँ आकर आप लोगों के बीच कुछ कहनेका मौका मिला है।

यह मौका किसने दिया ? इसी पर पहले थोड़ा सा विचार कर। साँकल तो आप सब लोगोंने देखी ही होगी। उसमें कुछ कड़ियाँ होती हैं। आप उनमें से किस कड़ी को साँकल कहेंगे ? किसी को नहीं ! तब यह “साँकल” कैसे बन गई ? लुहारकी कृपासे। लुहारने जब प्रत्येक कड़ीको दूसरीसे जोड़ दिया तब और तभी साँकल का निर्माण हुआ। ठीक इसी प्रकार भगवान् महावीर की कृपासे साधु साध्वी श्रावक और श्राविका रूप एक व्यवस्थित सघका निर्माण हुआ है। आप और हम उसी सघके अंग हैं। हम आपने हैं। आप हमारे हैं। यही तो कारण है कि आप हमारे पास आये हैं और हम आपके पास। हम देखकर आपकी प्रसन्नता हो रही है और आपको देखकर हम।

आप श्रावक श्राविका हैं अथान् मुनने वाले हैं। मैं जानती हूँ कि धम भ्रवणके ही लिये आप सब यहाँ पकत्र हुए हैं। आपकी अपेक्षाओंको पूरा करनकी मैं कोशिश करूँगी।

आज मानवमात्रको एक भूत लग गया है—भौतिकताका । उसकी चकाचौंमे वह धमक सात्त्विक प्रकाशको मूल गया है । भौतिकता सिखाती है कि सुख बाह्य पदार्थोंमें है—पुद्गल के सयागोंमें है । जरूर है । पर है—क्षणभंगुर । धार्मिकता कहती है कि उह सुख श्रणिक है—अनित्य है—अवास्तविक है और इसीलिए त्याग्य है । आप यदि वास्तविक सुख चाहते हैं—शाश्वत सुख चाहते हैं तो उसे बाहर नहीं, भीतर खोजिये । सच्चा सुख भोगमें नहीं त्यागमें है—पुद्गलमें नहीं, आत्मा में है—कर्ममें नहीं, धर्ममें है ।

धर्मो रक्षति रक्षित ।

हिन्दुओंके शास्त्र कहते हैं कि यदि हम धमकी रक्षा करेंगे तो धम हमारी रक्षा करेगा । रक्षा करना धमका स्वभाव है । धम प्रत्येक प्राणीका कल्याण करने वाला है । दशवैकालिक सूत्रमें इसीलिए उसे मंगलस्वरूप बताते हुए कहा गया है —

“धम्मो मंगलमुक्खिट्ट

धम बरुण्ट मंगल है । जहाँ धम है, वहाँ शांति है—सुख है । जहाँ अ धम है उहाँ श्रान्ति है—दुःख है । श्रान्तिसे और अशान्तिसे बचन के लिए धमकी शरण ग्रहण करनी होगी । जनाचाय कहते हैं —

‘कणलीप उत्त धम्म शरण गच्छामि ॥’

ठीक यही बात बौद्धाचाय भी इन शब्दोंमें कहते हैं —

‘धम्म शरण गच्छामि ॥’

परन्तु धमकी शरण जाते ही हमारे लिए पयाप्त नहीं है। हमें अपने मनको धमम लगाना होगा और उसमें लगाकर उसे यही स्थिर करना होगा। जैन शास्त्र कहते हैं —

‘ देवादि त नमसति, अस्य धम्मे सया मणो ॥

—दशवे०

अर्थात् जिसका मन धर्मम स्थिर हो जाता है—सदाके लिए दृढतापूर्वक जिसका चित्त धम म टिक जाता है उसे देवता भी नमस्कार करते हैं फिर मनुष्य आदिकी तो बात ही क्या ! मतलब यह कि जा धमात्मा है वह विश्ववन्द्य है।

पर धमात्मा बाने पर दुनिया हमें पूज्य माने या न माने, देवगण हमें नमस्कार करे या न करे, परन्तु अपने ही भीतरसे जो सत्तोपत्री अमृतबारा प्रवाहित होती है—शांतिकी गंगा उमड़ पड़ती है—प्रेमसागर की उत्ताल तरंगें उठने लगती हैं उन सबकी तुलना दुनियाके किसी भी मुरसे नहीं की जा सकती। उस परम आनन्दको पानेके लिए हमें परम पावन धमका अथलम्बन करना है—उसमें अपने चित्तको रमाना है।

अब आगे चलिए। सोचिये कि जिसम चित्तको माने की बार बार प्रेरणा की जाती है वह धम है क्या चीज ?

दुनियाम तो आज सैकड़ों धम प्रचलित हैं। जैन धम, हिन्दू धम, बौद्ध धम इस्लाम धम, इसाई धम, सिक्ख धर्म, पारसी धम, सनातन धम, वैदिक धर्म, कबीर पंथ, आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज रामकृष्ण मिशन, प्राथनासमाज थियॉसोफि-

कल मासाइटी, मुनिसमान, सत्यसमाज आदि तो बड़े बड़े प्रसिद्ध धर्म हैं ही, साथ ही श्वेताम्बर—दिगम्बर, हीनयान—महायान, शिया सुन्ना, प्रोटेस्टेंट—कथोलिक आदि विभिन्न शाखा प्रशाखाएँ भी प्रचलित हैं। इन सबके अपने अपने धर्म शास्त्र हैं। प्रत्येक का यह दावा है कि हमारा अपना धर्म ही सर्वश्रेष्ठ है और उसी से जगत् का कल्याण हो सकता है। ऐसी स्थिति में जन साधारण के मन में शका पैदा हो जाना स्वाभाविक है। क्योंकि वह निणय नहीं कर पाता कि किसे छोड़ें और किसे पकड़ें। कौन सा धर्म हेय है और कौन-सा उपादेय। कौन सा धर्म निःकृष्ट है और कौन-सा उत्कृष्ट।

भगवान् महावीर ने दशवैकालिक सूत्र के माध्यम से धर्म का एक साधा सादा लक्षण प्रस्तुत किया है —

“अहिंसा सयमो तपो ॥”

अहिंसा, सयम और तप को ही धर्म समझना चाहिये। लक्षण की इस कसौटी पर जो खरा उतरे, वही श्रेष्ठ धर्म है। जिस धर्म में अहिंसा सयम और तप पर जोर दिया गया हो, वही धर्म उत्तम है। भले ही उसका नाम कुछ भी क्यों न हो।

महत्त्व नाम का नहीं, काम का है। अहिंसा, सयम और तप की अविक से अविक साधना करने पर ही आप धर्मात्मा बन सकते हैं, इसलिये मेरी नहीं उल्लिखित भगवान् महावीर की यह सलाह है कि श्रेष्ठ धर्म की गोज के चक्र में न पड़कर आप अपने जीवन को अहिंसामय, सयममय बनाने की कोशिश कीजिये।

अहिंसा, समय और तप को एक शब्द में समझना चाहें तो वह शब्द होगा—त्याग, क्योंकि हिंसा के त्याग को अहिंसा कहते हैं—विषयों के प्रति इन्द्रिया की जो आसक्ति होती है उसको त्याग को समय कहते हैं और 'इन्द्र्यानिरोधस्तप' के अनुसार इन्द्रा या तृणा के त्याग को तप कहते हैं। इस प्रकार त्याग ही सर्वश्रेष्ठ धर्म सिद्ध होता है।

त्याग का विलोम है—भोग। विषय भोग तो पशु पक्षियों के जीवन में भी पाया जाता है, इसलिए मनुष्य भी यदि उसकी प्राप्ति के प्रयत्न में जीवन बरबाद कर दे तो यह कोई बहादुरी की बात न होगी बल्कि बकूफी की ही बात कहलायगी। क्योंकि विषय भोगों से मिलने वाला सुख क्षणिक होता है, इसलिए उसमें सुख का आभास मात्र होता है, वास्तविक सुख नहीं। किमी ने ठीक ही कहा है—

‘इन्द्रियप्रभव सौख्य, सुखाभास न तत्सुखम् ॥’

महस्थल में सूख किरणों के प्रभाव से जल का जो आभास होता है उसे वास्तविक जल समझ कर प्यासे हरिण दौड़ पड़ते हैं तो मनुष्य उनकी इस बेबकूफी पर हँसता है, परन्तु वह आखिर पशु है। हँसन योग्य बेबकूफी तो उन मनुष्यों की है जो 'मनुष्य होकर भी विषय भोग के सुखाभास को वास्तविक सुख समझ कर उसकी प्राप्ति के लिए दिन रात दौड़ घप करते रहते हैं।

मुझ आशा है कि अब तक के विवेचन से आप यह भली-भाँति समझ गये होंगे कि धर्म त्याग में है, भाग में नहीं।

धम के विषय में एक बात और ध्यान में रखने योग्य है। यह यही कि समता के साथ ही धम सुशोभित होता है, समताके साथ नहीं। समता धम को शुद्ध बनाये रखती है पर भ्रमता उसे अशुद्ध बना देती है। एक छोटे से दृष्टान्त से यह बात चल्दी समझ में आ जायगी।

हिमालय से निकल कर गंगा समुद्र की आर जा रही है। उसका जल मजुर है, शीतल है, प्यास बुझाने वाला है, मधुरता, शीतलता और प्यास बुझाने की शक्ति गंगा के सारे पानी में समान रूप से मौजूद है। चार प्यासे आदमी गंगा तट पर पहुँचते हैं। एक के पास चाल्टी है एक के पास घड़ा है, एक के पास गिलास। अपन-अपने बतनों में पानी भरते ही वे बतने लगते हैं कि “यह पानी मेरा है—यह तुम्हारा है—यह उसका है—आदि। यह अपने पराये का भेद भ्रमता का परिणाम है। समझदार व्यक्ति जानता है कि पात्र भेद होने पर भी पानी में भेद नहीं है। साने चाँदी के कलश में भरा ही तो क्या। और मिट्टी के घड़ में भरा हा तो भी क्या। पानी पानी समान है।

ठीक इसी प्रकार अहिंसा, सयम और तप अथवा त्याग रूप जो धम है, वह किसी व्यक्ति विशेष की वसीती नहीं है। धम पर सबका समान रूप से अधिकार है। यह मानव मात्र के लिए समान है। कोई भी व्यक्ति धार्मिक जीवन स्वीकार कर सकता है। धम के सहारे अपना कल्याण कर सकता है। यह मेरा धम है—यह तेरा धम है—यह अमुक का धम है

आदि बातें ममता के कारण कही जाती हैं । इस ममता से समता नष्ट हो जाती है—धम अशुद्ध हो जाता है—घृणा और द्वेष के बादल हृदयाकाश में छाकर मनुष्य को अशांत बना देते हैं । ऐसे व्यक्ति को धम का लाभ नहीं मिल सकता । जिसका जीवन अशांत है उसे सुख प्राप्त नहीं हो सकता ।

गीता कहती है —

“अशांतस्य कुत सुखम्”

[जो अशांत है, उसे सुख कहाँ ?]

सुख धमका फल है । जो दुखी है, वह धमात्मा कैसा ? मेरे कहने का आशय यह नहीं है कि धमात्माओं के जीवन में कोई सिकट नहीं आते । दुनिया का इतिहास साक्षी है कि धर्मात्माओं को (तीर्थ करों अघतागों और पगम्बरों को भी) अनजाने खप सताया है—भगवान् महावीरके फान्नोंमें कीलेढीके गये । महात्मा कृष्ण का मरना पड़ा । महात्मा ईसा को क्रूस पर लटकाया गया । महात्मा मुकरातको विपका प्याला पीना पड़ा । महात्मा गांधी को गोली खानी पड़ी । इस प्रकार धर्मात्माओंको ही सबसे अधिक कष्ट पठान पड़े हैं परंतु धीरता और प्रचण्ड सहिष्णुता के कारण ये लोग कष्टोंको कष्ट नहीं मानते थे । कांटोंमें गुलाबके फूलोंकी तरह सफ्टोंमें भासदा मुमकुराते रहते थे । इसलिए कौन कह सकता है कि वे सुखी नहीं थे ।

सुखका निवास शांतिमें है—शांति का निवास समता में । इसलिए धमात्मा बनना हो तो ममता छोड़िये, समता अपनाइये और अपना जीवन मंगलमय बनाइये ।

धस, आज इतना ही काफी है ।



२—प्रमाद छोड़िये !

सःपुरपो ।

पुरपाय करना हमारा प्रथम कर्तव्य है । जो पुरपाय नहीं करता—पुरपार्थी नहीं बनता वह पुरय बहलान योग्य नहीं है ।

पुरुषको पुरपायमे रोकने वाली धृषा चीज है ? प्रमाद । भगवान् महावीरन अपने प्रियतम शिष्य गौतमका प्रमादमे बचनेका धार धार उपदेश किया है । महा है —

“समयं गोयम ! मा पमायए ॥”

—वज्रसूत्र

ह गौतम ! तू क्षण भर का भी प्रमाद मत कर ।

महात्मा बुढ़न ती प्रमादकी मृत्युका कारण बतलाते हुए कहा है —

“प्रमादो मरुचुना पद्म ॥”

प्रमातफरीम किसी हिन्दी कवि की ये पंक्तियाँ गाई जाती हैं —

उठ जाग मृसाफिर ! भोर भइ,

अप राग कहीं जो सायत है ।

जो जागत है मा पायत है

जो सायत है मा शोषत है ॥

समय अमूल्य है—जो समय नष्ट हो चुका है, वह किसी भी कीमत पर फिरसे प्राप्त नहीं हो सकता । पशु पक्षियोंकी योनिमें जन्म लेकर पिछले भवार्थ हमने जो समय नष्ट कर दिया, सो कर दिया परन्तु मनुष्य योनिर्म तो यह भूल न करे। सुबह का भूला शामको घर आ पाय तो यह भूला नहीं पहचानता ।

आज सारे ससारके राष्ट्र आगे बढ़ रहे हैं तो भारत ही पीछे क्यों रहे । समयको पहिचानकर दूसरों में सबक लेकर जो चेत जाता है वही चतुर है । भारतके प्रमादका ही यह दुष्परिणाम हुआ कि चीन ने आक्रमण करके बहुत सी भूमि हथिया ली—हडप ली । अब भारत भी चेत रहा है—चतुर्गर्ह से—सगठनसे—एकतासे काम ले रहा है और विजयके विश्वासके साथ पुरुषार्थ कर रहा है, किन्तु प्रारम्भसे ही चीनियोंकी चाल समझ कर चौकनेपनसे काम लिया जाता तो शायद यह नौबत न आती ।

मनुष्य जीवनमें भी हमें प्रारम्भ से ही प्रमाद का जीतना है, जिससे कि आगे चल कर पड़तानेकी नौबत न आ जाये ।

विदेश-यात्रा करनी हो तो पासपोर्ट लेना पड़ता है । पासपोर्ट सामित अवधि के लिए होता है । उस अवधिकी समाप्ति होनेसे पहल ही आपके उस दशका त्याग करना पड़ेगा । ठीक इसी प्रकार प्रत्येक प्राणीको अपने अपने जन्मक साथ ही आयुवर्षकी सीमित अवधिका पासपोर्ट मिला है ।

यदि समाप्त होते ही उसे अपना शरीर छाड़कर अथवा

जाना पढ़गा। यात्राके पासपोट से चीघनके पासपोटम अन्तर यही है कि उसम तारीख लिखी रहती है और इसम लिखी नहीं रहती, इसलिए उसकी तारीख मालूम हो पाती है और इसकी तारीख मालूम नहीं हो पाती, परन्तु होती है चरम भीष्मपितामह जैसे विजिष्णु ज्ञानियोंको यह तारीख मालूम भी हो जाती है और वे चौकने होकर अपन जावनको धर्माचरणके द्वारा सफल बना लेते हैं।

चिह्ने तारीख मालूम नहीं है उन्हें भी यह तो मालूम है ही कि बीता हुआ समय किसी भी हालतमें लौट नहीं सकता। जैन शास्त्र चिह्ना चिह्ना कर चञ्चल चित्तके चौकना बनानके लिए कह रह है —

‘जा जा वषट् रयणी,
न सा पडिनियत्तइ।
अहम्म कुणमाणम्म,
अफला जति राइआ ॥”

और इसके विपरीत —

‘जा जा वषट् रयणी
न सा पडिनियत्तइ।
धम्म तु कुणमाणम्म,
सफला जति राइआ ॥’

—उत्तराध्ययनमूत्र

जो जो रात बीत जाती हैं वे फिरसे नहीं लौटती। धर्माचरणसे रातें सफल होती हैं और दुराचरण से विफल

हमें चाहिए कि प्रमाद का परित्याग करके धर्माचरण के द्वारा अपने जीवनको सफल बनाने का प्रयास करें।

मेहमान बनने भी शानदार मरना में ठहरे, पर उसरी उस मरान के प्रति आसक्ति नहीं होगी, क्योंकि वह समझता रहता है कि मैं यहाँ कुछ दिनों के ही लिए ठहरने वाला हूँ— आगे या पीछे मुझे यह स्थान छोड़ना ही पड़ेगा। ठीक इसी प्रकार हम भी सोचना चाहिये कि हम इस दुनिया में एक मेहमान की भाँति आते हैं और मेहमान की ही तरह इसे छोड़ कर जाने वाले हैं। जाना न चाहें तो भी हमें जाना पड़ेगा।

अच्छा मेहमान कौन है ? वही जो अपने मेजबान को तकलीफ न दे। ठीक यही गुण हमें भी अपने जीवन में बतारना चाहिये। हम भी दुनियाँ में किसी प्राणीको कोई कष्ट न दें और इस तरह दुनियाँ के एक अच्छे मेहमान बनने की कोशिश करें।

बाजारमें भाव तेज हों तो सभी व्यापारी मत्पट अपना-अपना माल निकाल कर बेच देते हैं और लाभ उठाते हैं क्योंकि चाँसका महत्व सब समझते हैं। उस परिस्थिति में यदि कोई व्यापारी अपना माल न बेचे तो उसे सब लोग मूर्ख समझते हैं, क्योंकि चाँस खूबने वालेको चतुर कौन कहेगा ? भाव मंदा होने पर ही उस प्रमादी की जाँस खुलती है और फिर वह हाथ मल मल कर पड़ताने लगता है, परन्तु —

‘जब बिड़ियाने चुग खेत लिया,

फिर पड़ताये क्या होवत है ?’

ठीक इसी प्रकार मनुष्य जन्म भी एक चांस है। चौरासी लाख जीव यानियोंमें भटकते भटकते बड़ी कठिनाईसे यह चान्स हाथ आया है। यदि इससे लाभ न उठा सके तो अन्तम मुरी तरह पड़ताना पड़गा। कहना पड़गा —

आठ दिन पाछे गये,

हरिसों क्या न हेत।

अब पछिताये होत का ?

चिरियनि चुनियों खेत ॥

चिड़ियोंके द्वारा खेतका सारा अनाज चूग लिया गया हो और तब कहीं प्रमादी किसानकी नींद उड़े तो उससे हो भी क्या सकता है ? उसके पड़ताने से गया अनाज तो वापिस आ नहीं सकता इस लिए उस अवस्थामें उसका रोना-धोना फिजूल होगा।

हमारा आयुष्य भी एक खेत है, जिसे काल रूपी चिड़िया रात दिन निरन्तर चूग रही है —

‘काल चिरैया चूग रहा,

निसि दिन आयुष खेत ॥”

जिस दिन हमने जन्म लिया था, उसी दिन से आयुष्य की फिल्म चालू हो चुकी है। एक एक दिन सामने आ रहा है और चला जा रहा है। इस तरह कई पक्ष, मास और वर्ष बीत गये हैं। किसी के चालीस वर्ष चले गये हैं तो किसीके सैंठि वर्षोंका सत्त हो जायगी और वे लोग

अपने जीवनमें कोई धमाधरन नहीं किया है, उस समय पढ़-
तानेके मिषाय और पुष्ट न कर सकेंगे।

मैं चाहती हूँ, आप इस तथ्यको भली भाँति समझ लें,
निससे कि भविष्य में वह पढ़तानका भयकर दिन न देखना
पड़े।

मानवजीवन बड़ा दुर्लभ है और पितना यह दुर्लभ है,
उतना ही मूल्यवान् भी है। मनुष्यके धराधर सोधन विचारने
की शक्ति और किसी प्राणी को प्राप्त नहीं हुई है। तीर्थकर
कन्ते है कि मोक्षका अधिकारी केवल मनुष्य ही हो सकता है,
दूमरा कोई प्राणी नहीं। अपनी आत्मा को उज्ज्वल करके
मनुष्य मोक्ष तक जा सकता है।

मेरा बहिनें नाराज न हों, मोक्षका अधिकार बड़े भी है।
“मनुष्य” शब्दका प्रयोग तो मैं इसलिए करती हूँ कि उसमें
स्त्री-पुरुष दोनोंका समावेश हो जाता है। भगवान् महावीरने
साधुसभके समान साध्वीसंघ इसीलिए बनाया था। भगवती
मह्री कुमारीन तो १७ वें तीर्थकरका पद भी प्राप्त करके यह
सिद्ध कर दिया था कि आत्मकल्याण की साधनामं नरके समान
नारी भी पराकाष्ठा तक पहुँच सकती है। परम गति प्राप्त
करने वाली सोलह सतियों का स्मरण पुरुष भी प्रातःकाल
करते ही हैं —

“ब्राह्मी चन्दन बालिका भगवती,

राजीमती द्रौपदी।

[१५]

कोशल्या च मृगावती च सुल्सा,

सीता सुभद्रा शिवा ॥

कुन्ती शीलवती नलस्य दयिता,

चूलप्रभावत्यपि ।

पद्मावत्यपि सुदरी दिनमुखे,

धुवतु नो मङ्गलम् ॥”

हाँ, तो मैं कह रही थी कि प्रत्येक मनुष्य मोक्षको प्राप्त कर सकता है। शत यह है कि वह प्रमाद छोड़ और धर्माचरण का पुरुषार्थ करे।



३ - भेद विज्ञान

भयात्माओ !

अपनी आत्मा को भव्य बनाने के लिए पापों से वचना जरूरी है और इसका लिए जरूरी है—भेद विज्ञान। अधिकांश पाप अपन शरीर या इन्द्रियों के पोषण के लिए ही किये जाते हैं, इसलिए शरीर और आत्मा के भेदकी समझ लिया जाय तो आसानी से पाप प्रवृत्ति छूट सकती है। आज इसी विषय पर विचार करेंगे।

तिलों में तैल की तरह शरीर में आत्मा व्याप्त है। शरीर जितना बड़ा होता है, आत्मा भी उतनी बड़ी हो जाती है। जो शरीर का आकार रहेगा, वही आत्मा का आकार रहेगा। अघेरी कोठरी में एक दीपक जलाया जाय तो उसका प्रकाश सारी कोठरी में फैला रहेगा परंतु उसी दीपक पर यदि एक कटोरा उलटा रख दिया जाय तो कमरे भरका सारा प्रकाश सिमट कर उस कटोरे के भीतर सीमित हो जायगा।

—इस सु दर दृष्टान्त के द्वारा जैनाचार्यों ने उस शरा का समाधान किया है, जिसमें पूछा जाता है कि जो आत्मा हाथी के शरीर में रहती है वही एक छोटा सा चाटी में कैसे समा सकता है। कोठरी या कटोर के स्थान पर आप विभिन्न रंगों को समझ लीजिये और उनमें दीपक की लौके समान

आत्मा मानिये । इस तरह यह शंका सर्वथा निर्मूल हो जायगी ।

हम कहते हैं, "अमुक आदमी मर गया", किन्तु जिस शरीर को हम पहले देखते थे वह ता अब भी ज्यों का त्यों मौजूद है, फिर कौन मर गया ? शरीर में जो चेतना थी, वह चली गई । जो चली गई, वही आत्मा है । जो जलाया जान वाला है, वही शरीर है ।

आत्मा को कौन जला सकता है ? आग में भी वह शक्ति नहीं है । आत्मा को कौन काट सकता है ? किसी भी शस्त्र में ऐसी शक्ति नहीं है । आत्मा न पानी से गीली हो सकती है और न हवा से सूख सकती है । जैसा कि गीता में कहा गया है —

“नैन द्विन्दन्ति शस्त्राणि,
नैन दहति पावक ।
न चैन फलेदयत्यापो,
न शोषयति मारुत ॥”

गीता ही क्यों ? शुरान, पुराण, भगवती, भागवत आदि सारे धर्मशास्त्र यह भेद—पुरुष और प्रकृति का यह अंतर—शरीर और शरीरी (आत्मा) का यह फर्क समझाने के लिए ही अनुभवी सतों द्वारा रचे गये हैं ।

किसी कविने गाया है —

“आज अच्छी तरह जीवन
जगको खेल समझा है”

ज्ञानकी आगसे अन्न
वासनाका बीज जल जाये ॥

—गीतावश्यकमंत्र

अपने जीवन मरणको खेल वही समझ सकता है जो शरीर और आत्मा का भेद समझता हो। नाटक में एक ही पात्र विभिन्न रूप धारण करके अभिनय दिखाता है। इसी तरह एक ही आत्मा विभिन्न शरीर धारण करता है। कभी राजा बनता है, कभी रक—कभी अमीर बनता है, कभी गरीब कभी स्वस्थ रहता है, कभी अपग या अपाहिण—कभी छोटा बनकर दिनहिनाता है, कभी गधा बनकर रेंकता है—कभी चूहा बनता है, कभी चींटा। यह सब बनने वाला कोई अलग तत्त्व है, जिसे चैतन्य कहते हैं—जीव कहते हैं—आत्मा कहते हैं।

शरीर नश्वर है—अनित्य है और आत्मा अनश्वर है—नित्य है। इस क्षणभंगुर शरीर को क्षणभंगुर मानना सम्यक्त्व है। आत्मा को शाश्वत मानना भी सम्यक्त्व है। इससे विपरीत मानना मिथ्यात्व है।

पहनने का वस्त्र मैला हो जाय तो आप लोग क्या करते हैं ? साबुन और जल से उसे धोकर स्वच्छ बना लेते हैं। भेद विज्ञान भी ऐसा ही एक साबुन है, जो समता रूपी जल के साथ आध्यात्मिक गुद्धि में उपयोगी बनता है। “समयसार नाटक में कहा गया है —

“भेदज्ञान साबुन भयो,

समता निमल नीर।

धोबी अंतर आत्मा,
धोवे निचगुण चीर ॥”

धगुला दूध में मिले हुये पानी को पी जाता है, पर इस पेमा नहीं करता। यह पानी से दूध को अलग करके ग्रहण करता है। त्रिवेकी आत्माएँ भी शरीर और शरीरी का भेद समझकर दोनों का उनके योग्य ही आदर करती हैं, परन्तु धगुले की तरह मूढ़ लोग शरीर को ही आत्मा मान बैठते हैं और शरीर के रक्षण और पोषण में ही सारी आयु समाप्त कर देते हैं।

आत्मा को धोड़ी दूरके लिए सेठ मान लिया जाय तो शरीर को मुनीम मानना पड़गा। यदि मुनीम की गलती से व्यापार में घाटा हो जाय तो उसकी पूर्ति कौन करेगा? सेठ करेगा, मुनीम नहीं। शरीर पाप करेगा तो फल आत्मा भोगेगी। शरीर तो यही रह जायगा। परलोक में साथ नहीं आयगा। वहाँ पूवभवके पाप का कड़ुआ फल खेलेली आत्मा भोगेगी।

नरक में धार यत्रणाएँ भोगने के लिये पूवभव का शरीर आत्मा का माय न देगा। पूवभव और परलोक की बात छोड़िये, इस भव में भी ऐसे अनुभव प्रतिदिन हाते हैं। मीठा और कोमल समझ कर जीभ यदि मथादा से अधिक हलुआ चट कर जाय तो अजीर्ण का और अजीर्ण के प्रभाव से होने वाली भयंकर बीमारियों का दुःख क्या जीभ भोगती है? कभी नहीं। स्वयं तो आत्मा का ही ठठाना पड़ता है”

आदिकाव्य “रामायण के रचयिता वाल्मीकि इसी भेद-विज्ञान के प्रताप से सम्हल कर टाकू से महर्षि बन गये थे। उन्हें यह मालूम हो गया था कि जिस परिवार के लिए मैं इतनी हथ्याएँ और लूटपाट करता हूँ, उसका एक भी सदस्य मेरे इस पाप के फल में साम्कीदार न होगा— पापका पूरा फल मुझे ही भोगना पड़ेगा। यह जानकारी होते ही तुरन्त वे विरक्त हो गये और स्वपर कल्याण की साधना में जुट कर अमर हो गये। यह कथा काफी प्रसिद्ध है इसलिये विस्तार से कहने की आवश्यकता नहीं है।

हाँ, एक सेठजी को किस तरह भेद विज्ञान हुआ सो कथा जरा विस्तार से सुनाकर मैं आपका अपना वक्तव्य समाप्त करूँगी।

एक छोटा-सा गाँव था। उसमें चतुरचन्द नामक एक सेठजी रहते थे। सेठानीकी कोखसे पहले एक कन्या हुई और उसकी पीठ पर दो पुत्र हुए। कन्याकी शादी हो चुकी थी। दोनों पुत्र अभी छोटे थे और बड़े होते तो भी क्या ? सेठजी जानते थे कि पुत्रोंका विवाह कोई घाटेका नहीं, बल्कि लाभका ही सौदा होता है। इसलिए वे निश्चित होकर कमाते और बिना कचूसीके उसका दिल खोलकर उपभोग करते थे।

सेठ चतुरचन्दका मुख्य व्यापार कपासका था। वे फुटकर कपास खरीदते और एक साथ बेचते थे।

विज्ञान एक अच्छी चीज है—यदि उसका दुरुपयोग न किया जाय। जिस विज्ञानसे क्षण भर में दशविदेश के समा-

घार इधर से उधर पहुँचान थाले रेडियो जैसे अद्भुत यंत्रणा आविष्कार हुआ, वसीसे अणुबम जैसे सहारक शस्त्रास्त्रोंका भी निर्माण किया जा रहा है। स्पष्ट ही विज्ञानका यह दुरुपयोग है। वैज्ञानिकों की कट्टर राष्ट्रीयता या स्वाथपरता ही इसका कारण है।

सेठजी भी थड़े मनोवज्ञानिक थ। आकृति और घात करनेके लगसे हा वे आग-तुक्को अच्छी तरह पहिचान लेते थे कि वह कितने गहरे पानीम है—कितना जानकार है—कहाँ तक पढ़ा लिखा है, कि-तु स्वाथके लिए वे अपने इस मनोविज्ञान का दुरुपयोग किया करते थे। भोले-भाले प्रामीणोंको ठग लिया करने थे। विश्वासघात करनेके किसी अवसर को वे चूकते नहीं थ।

एक दिन एक प्रामीण बुढ़िया उनकी दूकान पर आई। अपन सिर पर वह कपासकी भरी हुई एक गठरी लाइ थी। वमे उनके सामने रखते हुए बसने कहा — 'सेठजी! कपास तोल कर ले लाजिये और हिसाब के अनुसार पैसे द दीजिये।'

सेठजी कपाम तोलते हैं। उनका मूल्य २५ रु० आकते हैं। ठीक वसी समय उनके मनमें लोभका भूत घुस जाता है और वह उन्हें विश्वासघात करनेके लिए प्रेरित करता है। वे मोचते हैं कि यह बुढ़िया पढ़ी लिखी तो है नहीं इसलिये २५ रु० के बजाय २० रु० देदूँ ता भी यह क्या समझ पायेगी।
इतना हुआ ? और

भाध है ? तथा भावके अनुसार इस कपासका असली मूल्य क्या है आदि बातें यह नहीं जानती। इसे हिसाब करने योग्य गणित का ज्ञान भी नहीं है।

ऐसा मोच कर २५ रु० के बदले २० रु० के ही नोट बुढिया के हाथमे मेठजाने थमा दिये। बुढिया उहें लेकर चुपचाप वहाँसे चलती गती। जितन रुपये आये, उतनेमें ही यह सतुष्ट थी। सतोपी सदा सुखी होता है। गुजरातमे एफ कहावत प्रसिद्ध है —

“खावाने रोटलो। बेसवान ओटलो ॥”

खानेकी रोटी और बठनेकी चनूतरेकी थोडीसी जगह मिल जाय तो भी जीवनके लिए पर्याप्त है। मनुष्य तृष्णासे ही दुस्वी होता है। तृष्णाकी कभी तृप्ति नहीं हुई—न होती है—न होगी। यह जानते हुए भी मनुष्य अपनी तृष्णाको तृप्त करने के लिए दिनरात दौड़-धूप करता-रहता है। इसके लिए बड़े से बड़ा पाप करने में भी नहीं हिचकिचाता।

तृष्णा मनुष्यको पागल बना देती है—अन्धा बना देती है। हिन्दीके एक महाकवि कहते हैं —

‘आँखिन आछत आंधरा

जीव करे बहु भाँति।

धीरन धीरज विनु करे,

तृष्णा कृष्णा राति ॥”

तृष्णा काली रात के ममान आँगों वाले मनुष्यों को भी अधा बना देती है। मारे भयके बड़े बड़े घैयशालिर्याका घैय भी छूट जाता है। प्रलोभन का शिकार बन कर जो अपना कत्तव्य-अकत्तव्य भूल जाना है, उस मनुष्यका आजा हा सम मना चाहिये।

चतुरचन्द्र सेठ भी अपना कत्तव्य भूल कर इसी तृष्णाके कारण अचे हो गये थे। पाँच रुपयोंकी बचत हो गई थी, उनका उपभोग करना चाहते थे। नौकर को बुलाकर उसके साथ पाँच रुपयेका माल ररीद हुआ घर भेज दिया और सदश भिन्दा दिया कि आज खूब मालपूण-पकौड़ी-कचौड़ी दहीबड़े बनाये जायँ। मैं दा घटे में स्नान करके आता हूँ, तब तक सब कुछ तैयार होना चाहिये।

नौकरने सेठानी की को सामग्री ले जा कर देते हुए सेठानी का सन्देश सुना दिया।

भारतीय नारियाँ पतिपरायणा होती हैं। अपने पतिको ब दवतातुल्य मानती हैं। उनकी आशाओंका पालन करना अपना कत्तव्य समझती हैं। उनकी इच्छाओंकी पूर्ति करनेमें अपना अहोभाग्य समझती हैं।

सेठजीके सन्देशको शिरोघाय करके सेठानी मालताल बनाने में जुट गई। घटे डेढ घटमें सारा पक्वान तैयार हो गया। पतिदेव के लिए उसने आसन बिछाया, बाँझोठ लगाया और एक परवा आगमन की प्रतीक्षा में बैठ

सोचने लगी कि स्नान करनेके बाद भूख कुछ बढ़ जाती है। सेठजी स्नान करके आयमें तो उनकी भूख तेज होगी। आते ही वे भोजन परोसन के लिए कहेंगे। मैं परोसूंगी और पत्ता भलते हुए उन्हें खिलाऊँगी। मेरी सेवाको—मेरे परिश्रमको इस सुन्दर सुगन्धित पत्रानके रूपमें देस कर वे बहुत बहुत प्रसन्न होंगे। उनकी प्रसन्नता से मैं कृतकृत्य हो जाऊँगी। मेरा जीवन सफल हो जायगा आदि।

परन्तु कुदरतको कुछ और ही मन्त्र था। मनुष्य सोचता क्या है और होता क्या है। आशाएँ हमेशा सफल नहीं हुआ करता। एक भ्रमरकी आशाओं पर किस तरह पानी फिर गया था ? मुनिये —

रात्रिगमिष्यति भविष्यति सुप्रभातम्

भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पक्व श्री ।

इत्थ विचिंतयति कोपगते द्विरेके

हा हत ! हत ॥ नलिनी गज - जहार ॥

मूर्यास होते ही कमलके कोप में बन् भौरा मनमें सोच रहा था कि रात बीतेगी, प्रभात होगा, सूरज उगेगा, कमल फिर से मुस्कुरायेगा और उस समय इस कद में मेरा छुटकारा हो जायगा, परन्तु हाय ! हाय ॥ उसी समय वहाँ आकर उस कमलिनीको एक हाथीने तोड़ डाला। भौरा की आशाएँ भौराके मनम ही रह गई। मनुष्य भी इसी प्रकार अपने मनम सैकड़ों सकल्प करता है—हजारों कायक्रम बनाता है—छायाँ

आशाएँ रखता है परन्तु काल या मृत्यु रूपी हाथी आकर उसके सारे इरादों पर पानी फेर देता है।

सेठानीजी की भी आशाएँ सफल न हुई। सेठजीके पहले ही यहाँ जमाई जी आ पहुँचे। अपने साथ एक मित्रको भी लाये थे वे। सामूची का प्रणाम आदि करके कुशल पूछने के बाद उन्होंने कहा कि हमें अधिक ठहरने का समय नहीं है। अत्यन्त जरूरी काम है। इसके लिए दूमरे गाँव आठ ही शाम तक पहुँचना है। अथवा आना न आना बराबर हाँ जायगा। इस लिए आप हमारे लिए नई रसोई बनाने की रटपट में न पड़ कर रसोई घर में चूनी भी रसोई तैयार हो, वही परोस दोनिये।

अब सेठानी बड़ विचार में पड़ गई। मालपू सेठजीके लिए रखें या जमाई जी का परोसूँ। नई रसोई बनाने तक ये ठहरनको तैयार नहीं है। इन्हें भूखे लौटा कर घर की ताक फटाई नहीं जा सकती। कहाँ ये नाराज हो गये तो मेरी बटी का तकलीफ देंगे। क्या करूँ ? आखिर सेठानीजी ने यही निणय किया कि मालपू गमागम तैयार है वही परोस देना चाहिये। थाली लगा कर मालपू पकौड़ी आदि सामग्री परोस दी गई। दोनों मित्र भूखे थे। यहाँ ऊँची चढ़ा कर भिड़ गये और देखते ही देखते सारा माल मफाचट्ट कर गये। सामूची सोचन लगी कि नमून के लिए आधा मालपू उड़ा ही बच जाय तो सेठानीजी को नुकता है परन्तु

भी न बचा ! जमाई जी हाथ धोकर मित्रके साथ तुरन्त यहाँ से विदा हो गये ।

उबर सेठ जी स्नान करने गये थे । रात्र मल-मल कर उन्होंने स्नान किया । कपड़े धाये । नई पोशाक पहिनी और आनन्दसे घरकी ओर चल पड़ । मालपूए खाने का काल्पनिर् सुग लूटते हुए ज्वा ही वे घर पहुँचे और आसन पर बठे त्यों ही उनकी सारी कल्पनाओंका कचूमर निकल गया उन्होंने दया कि सामने पगेमी हुई जो थाली रंगी है उसमे सदा की भाँति सादी रसोई है, मालपूओंका एक टुकड़ा भी नहीं । उनके आश्चय का ठिकाना न रहा । वे जानते थे कि मेरी पत्नी बड़ी आज्ञाकारिणी है । मामानकी भी घरमे कोई कमी नहीं है । जा कुछ मामग्री कम पड़ सकती थी, वह भी मैं नौकरके साथ यहाँ भिजवा चुका हूँ । तब क्या कारण है कि आज सेठानोने मेरी आज्ञाका पालन नहीं किया ।

सेठानी सेठजीके मनकी शका जान गई थी इसलिए उन्हें पूछने के सकोचम न डाल कर स्वयं ही पिछली घटना उसी धनी थी वैसे कह सुनाई ।

सेठजी विचारम हूय गये । जय मनुष्य प्रमादनिद्रा छोड़ कर जागृत हो जाता है तत्र उस अपने पाप प्रत्यक्ष से निग्राई देने लगते हैं । प्रत्येक कौरक साथ उन्हें उस तिन उस बुद्धिया की भोली भाळी सुरत दिखाइ दे रही थी । अपनी जिहा लोलुपताका शांत करने के लिए उन्होंने बुद्धियाके साथ

बिश्वासघात किया था। उसके पाँच रुपये ठग लिये थे। कितना बड़ा पाप कर डाला था माल खानेके लिए। परन्तु आखिर माल भी तो नहीं मिल सका। माल खा लिया जमाई ने और परलोक में इस पापके बदले मार खानी पत्नी मुझ ! यह कैसी उरटी बात ? यह कैसी मूर्खता ?

सेठजीने उसी दिन अपना परलोक सुधारनके लिए यह कदम चला कर लिया कि भविष्य में कमी किमीका एक नया पैसा भी अन्याय पूर्वक ग्रहण करने की कोशिश न करूँगा। पापका फल पाप करने वाली आत्मा को ही भोगना पड़ता है, न जीमका और न जमाई आदि और किसी प्राणीको।

इस भेदविधानने उनकी आत्माको दूसरी ओर—धमकी ओर—न्यायकी ओर मोड़ दिया। वे यह भलीभाँति समझ गये कि इस शरीरके लिए कोई पाप न करना चाहिये। शरीर अलग है और आत्मा अलग।

सेठजी तो विचार शील थे इसलिए समझ गये और उन्होंने आत्म सुधार का माग पकड़ लिया; पर तु मैं आप लोगों से यह पूछना चाहती हूँ कि आप भी कुछ समझे या नहीं। क्या आप उस सेठ के घराबर भी अब तक अपनी आत्मा को जागृत नहीं कर सके ? क्या अब तक सुने हुए आपके सारे धर्मोपदेश व्यर्थ गये ? क्या आप धार्मिक प्रवचन केवल इसीलिए सुनते हैं कि लोग आपको 'धर्मात्मा' समझें—भले ही धर्म ने आपके जीवन में स्थान न पाया हो ?

सूत्र याद रखिये । धमात्मा कहलाने से नहीं, धमात्म बनने से ही आपका जीवन सफल हो सकेगा । इसलिए लो! आपको कुछ भी कहें और कुछ भी समझ, उनके कहने समझने की परवाह न करके आप सीधे धमात्मा बनने की कोशिश कीजिये ।

उस दिन सेठ चतुर चन्द ने कोई धर्मोपदेश नहीं सुना था, फिर भी वे धर्मात्मा बन गये । विचारों ने उनकी चित्त-शुद्धि का बदल दिया था । आप भी विचार कीजिये—वहाँ कोई दाग तो नहीं है ? कोई दोष तो नहीं है ? यदि यैसा कुछ हो तो पश्चात्ताप की अग्नि द्वारा उसे भस्म कर डालिये । और प्रभु भक्ति की गंगा में स्नान करके पवित्र बन जाइये । आपके इस प्रयत्न में यह विचार सहायक होगा कि शरीर से आत्मा अलग है, भले ही वह कमल में सुगन्ध की तरह शरीर में न्याप्त हो ।



४—क्षण भंगुरता

नित्यात्माओ ।

इस मसार में आपकी आत्मा ही नित्य है, शेष सब कुछ अनित्य है—क्षणभंगुर है । आज है सो फल नहीं । किसी कविता की ये पक्तियाँ कितनी उत्तम हैं —

“फूल फल उद्यान में

फूला फला देखा अहो ।

आज ‘सूरजचंद यह

जुम्हला गया क्या कर कहो ?

एक सा होता कभी

ससार का प्रति पल नहीं ।

यह दशा अपनी समझ लो,

आज है सो फल नहीं ॥”

आप और किमी को नहीं, अपने आपको ही देखिये । जब आपका जन्म हुआ था, तब आप कितने छोटे से शरीर में रहते थे ? फिर बच्चे बने, बालक बने, किशोर बने, तरुण बने और आज आपका शरीर कितना बृद्ध हो गया है ? कहाँ गया वह जवान्गी का जोश ? कहाँ गई वह दौड़-धूप की क्षमता ? कहाँ गायन हो गये वे गुलाबी गाल ? वे चमकीली आँखें आज क्यों भीतर धँस गई हैं ? सोचिये !

जो शरीर इन पचास साठ सालों में ही इतने रग बदल चुका है, उसका क्या भरोसा किया जाय ? उसे क्यों अपना माना जाय ? उसके लिये उसके सुख के लिए क्यों पाप किये जाय ? क्यों परलोक बिगाड़ा जाय ?

रात को हम मीठे मीठे सपने देखत हैं—प्रसन्न होते हैं और कभी कभी भयकर दृश्य सपने में देखकर कांपने भा हग जाते हैं, परंतु प्रातः काल होते ही—असलियत का पता लगते ही वह सारा हृष और वह साग शाक गायब हो जाता है। हम समझ लेते हैं कि जो भी दृश्य सपने में देखे गये थे और उनके जो प्रभाव सुख दुःख के रूप में हमारे मन पर पड़े थे वे सब कल्पित हैं।

मसलर भी एक ऐसा ही सपना है। शररजी पावती से रामचरितमानस में कहते हैं —

‘उमा ! वहाँ मैं अनुभव अपना।

सत हरि भजन जगत सब सपना ॥”

—गो० तुलसीदास

कह रहा है कि रात का सपना जहाँ सिर्फ साठ-सत्तर मिनटों का होता है, वहाँ जीवन का सपना होता है—साठ सत्तर घण्टों का।

दोनों में एक बड़ा भारी अंतर यह भी कहा जा सकता है कि जगन् का सपना जहाँ आँख बंद होते ही सत्म हो जाता है वहाँ रात का सपना आँख खुलने पर सत्म होता है। कहा भी है —

‘संमीलने नयन धोन हि किञ्चिदस्मि ॥’

जब तक आँसू खुलती हैं—हम आविष्ट हैं, कर्ना नरक
‘मेरा मेरा’ किया करते हैं—“अपना अपना” विद्वत् होते
हैं—ममता के चक्कर में आत्मस्वरूप भूल देते हैं—अन्त में
आँसू बंद हुए कि समझना पड़ता है—अपना क्या है, मेरा
सपना ही सपना है ।

त्रिवेकी मनुष्य आँसू ‘बन्द’ होने से (अज्ञान) के कारण
श्रुति महर्षियोंके प्रवचनोंसे अथवा धर्मग्रन्थोंके वाक्योंसे
यह जान लेते हैं कि जीवन सपना के समान है—अज्ञान है
भगवान् महावीर स्वामीन यही तो कहा था —

“कुसुमो वह आमबिंदुर,
थाव विद्वद् लज्जमानः,
एव मगूआण जीवितं,
समय गीयम । ना पन्दात् ॥”

जैसे कुशा (तिनक) के अममान पर दृष्टि पड़ने
ओसका बिंदु थोड़ी ही देर तक रहता है, वैसे ज्ञान
जीवन है—ऐसा समझ कर हम गारम ! नृधर्म के अज्ञान
प्रमाद मत कर ।

तिनकेकी नोक पर रहने वाली पाना का बूँद दबाकर
जगमा मूँका आते हा गिर कर मिट्टी में मिट जाती है । ठीक
वही प्रकार मृत्युना आक्रमण होते हा हमारा जीवन था

मिट्टीम मिल जाता है—नष्ट हो जाता है। सपने की क्षण भंगुरता पर सबका विश्वास जम जाता है, पर जीवन की क्षणभंगुरता पर जल्दी विश्वास नहीं जमता।

कोई-कोई व्यक्ति तो इतने मूढ़ और दुराग्रही होते हैं कि सपने को भी सच्चा मान बैठते हैं। एक दृष्टान्त द्वारा यह बात जल्दी ध्यानम आ जायगी।

एक ठाकुर थे। शानदार महलमें रहते थे। ठाकुराइन भी सुन्दर थी। गुणोंसे सम्पन्न थी। कामनाजम ठाकुर साहबको भी वह सलाह दिया करती थी। वह चतुर होते हुए भी जिद्दी थी। ठाकुर साहब उसका इस स्वभावको ज नते थे, इसलिए परिस्थितिक अनुकूल अपने आपको ढाल लेते थे। किसी पारचाय विचारवने ठोक ही कहा है —

‘यदि तुम किसी गोल छेदमें जा पडो तो तुम्हें अपन आपको गेंद बना डालना होगा।’

यह सूक्ति हमें परिस्थितिके अनुकूल बननेकी शिक्षा देती है। घड़ी के चक्र एक-दूसरेके अनुकूल घमकर ही सही समय बतानेमें सफल होते हैं। गृहस्थ जीवनम भी यह गुण अनिवार्य आवश्यक होता है। परिवारके विभिन्न सदस्य विभिन्न रुचि वाले होते हैं। जो निभाना और निभना जानता है वही स्वयं सुखी रह कर परिवार को भी प्रसन्न रख सकता है। जो बात परिवारके लिए सत्य है, वही समाजके लिए भी समझ लीजिये। सासू बहू, ननंद भौचाइ देरानी जेठानी आदिके सम्बन्धमें सच्चे सम्बन्ध बनाने के लिये सच्चे सम्बन्धों

स्पर्शिक मनोगालिय, गुरु शिष्यकी शठपट्ट और मित्रिन्द्रोंकी कटकट भी देशको नरक बना देती है। घात घातमें परासी तन गई तो दा घनिष्ठ मित्र जाती दुरमन बन जाते हैं। पति पत्नी का प्रेम मित्रतासे भी कुद् ऊचा गुण है। वसम निभना-निभाना आय बिना काम चल ही नहीं सकता।

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि स्वभावोंमें भिन्नता होत हुए भी ठाकुर ठकुराइन की आपसमें रूय निभ रही थी।

एक दिन किसी जरूरी काम से ठाकुर साहब तीन दिनके छिए हमरे गाँव चले गये। बिदा होते समय ये ठकुराइनसे कह गये थे कि काम निपट गया तो आज ही शाम तक लौट आऊँगा और नहीं निपटा तो उसे पूरा निपटा कर तीसरे दिन अवश्य आ जाऊँगा।

ठाकुराइनका यह दिन सगियों के साथ हसी ठिठोली करते हुए बीत गया। शामकी सूर्यास्त होते ही यह ठाकुर साहबके आगमन की प्रतीक्षा करने लगी। रात हो जाने पर भी जब ठाकुर साहब लौट कर नहीं आये, तो समझ मनमें कइ प्रकारके सकल्प विकल्प उठने लगे। यह भूल गई थी कि काम न बननेकी दशामें ठाकुर साहबन तीसर दिन आने की घात भी कही थी। यह शशा-कुराकाके चकारमें पड़ कर चिन्ता करने लगी। उसी अवस्थामें उसे नींदन आ घेरा।

स्वप्न शास्त्र वाले यह कहा करते हैं कि सोते समय मनुष्य के जैसे विचार हाते हैं, वहीँका मूलरूप सपनेमें प्रत्यक्ष

है। यह विश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि सपनेमें जो कुछ देखा गया है वह वैसा होगा ही।

ठठुराईनका भी एक भयकर स्वप्न उस रात दिग्गद्द दिया। उसने देखा कि ठाकुर साहब जगलमें शेर का शिकार करने गये। वहाँ उनकी गोलियाँ बेकार चली गई। प्रत्येक निशाना खाली गया और अन्तमें बन्दूकके मारे कातूस खत्म होते ही झपट कर शेरने उनके शरीर पर आक्रमण कर दिया—अपने पजेक तीखे नाखूनसे ठाकुर साहब के शरीरको लहूलुहान कर दिया। ठाकुर साहब तुरन्त जमीन पर लुढ़क गये और उठोन अपनी अन्तम साँस छोड दी।

स्वप्नमें इस भयानक स्वप्न को देखते ही ठठुराईन चीर पडी। उसकी नाँद नौ दा ग्यारह हो गई। उसने छठते ही तुरन्त रोना-पीटना शुरू कर दिया। गहने उतार दिये। चूडियाँ फोड दी। ललाटका सिन्दुर पोछ डाला। सर पीट-पीटकर करुण वन्दन करने लगी।

चिल्लाहट सुनकर सद्देलियाँ और दासियाँ दौड़ी आइ। मन्त्री, नौकर चाकर आदि सब वहाँ इकट्ठे हो गये। सब लोग उसे अपने अपने ढगसे सात्वना देने लगे।

मन्त्रीने नम्रतापूर्वक दानाँ हाथ जोड कर प्रेम और शांति भरे स्वरसे पूछा —“ठठुराईन जी। आप क्या इस प्रकार आज यह विलाप कर रही हैं ?

ठठुराईन बाली —“इसलिण कि मेरा सुहाग खिन गया

ट्टे । मैं विषवा हो गई हूँ । ठाकुर साहब मुझ सदाके लिए अकेली छोड़ कर परलोक सिंघार गये हैं ।”

मन्त्राने फिर पूछा — ‘लेकिन आपको यह सब कैसे मालूम हुआ ? कोई आदमी आकर यहाँ ऐसा शोकसमाचार सुना गया था क्या ?’

ठकुराईन — ‘जी नहीं, यहाँ तो कोई नहीं आया । अन्त पुरमं कोई दूसरा आदमी आ भी कैसे सकता है ?’

मन्त्री — ‘तो क्या कोई पत्र आया था—इस विषयमें ?’

ठकुराईन — ‘जी नहीं, किसीका कोई पत्र यहाँ नहीं आया ।’

मन्त्री — ‘तो फिर क्या आया ?’

ठकुराईन — ‘सपना आया था । सपने में ही मैं वहाँ अन्तिम साँस छोड़ते हुए देखा था ।’

मन्त्री — ‘और सपने की बात आपने सच मान ली ?’

ठकुराईन — ‘क्यों न मानती ? मेरा सपना कभी मूठा नहीं होता—एसा मेरा बिरास है ।’

मन्त्री — ‘फिर भी पक्के समाचार आने तक आप प्रतीक्षा कीजिएगा । मैं अभी घुड़सवार भेज कर उनके समाचार मँगवाता हूँ ।’

एसा कह कर ठकुराईनने कहनेकी (या अनुमति की) प्रतीक्षा न करते हुए मन्त्री वहाँसे चला गया ।

मे पहुँचते ही मन्त्री ने

साथ दो तेज घुड़सवारों को उस गाँव की ओर भेज दिया, जिसमें ठाकुर साहब गये हुए थे।

यथास्थल पहुँचकर घुड़सवारों ने पत्र दे दिया। ठाकुर साहब ने पत्र पढ़ कर उत्तर लिख दिया कि मैं पूण स्वस्थ हूँ। किसी को मेरे लिए किसी प्रकार की चिन्ता न करनी चाहिये। मैं तीसरे दिन लौटने की बात कह आया था। उसी के अनुसार यहाँ का काय पूरा करके मैं कल शाम को लौटकर चला आने वाला हूँ।

यह पत्रोत्तर घुड़सवारों ने मंत्री के पास पहुँचा दिया। मंत्री उसे पढ़कर प्रसन्न हुए और ठकुराईन के पास जाकर उन्होंने वह कुशल पत्र स्वयं पढ़कर सुनाया। ठकुराईन ने उस पत्रोत्तर को जाली मानते हुए कहा कि यह सब मेरा दिल बहलाने के लिए रचा गया एक पडयंत्र मात्र है। अब भी मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि ठाकुर साहब इस दुनियाँ में नहीं रहे।

मंत्रीजी ठकुराईन के निही स्वभाव से परिचित थे, इसलिए कुछ न बोले और मन ही मन यह समझ कर सतोष माना कि कल शाम का जब स्वयं ठाकुर साहब यहाँ पहुँचेंगे, तब दूध का दूध और पानी का पानी हो जायगा। सारा मामला अपने आप सुलझ जायगा।

आखिर यह दूसरा दिन भी बीत गया। तीसरे दिन अपने पूर्व निश्चय के अनुसार शाम को ठाकुर साहब लौट आये।

आते ही ठकुराईन की सान्त्वना देने के लिए वे सबसे

पहले अपने अंत पुर म गये। ठाकुराईन के विपुल चेहरे को और उद्दामीनता का दख कर वे समझाने लग —“प्राण-व्यारी! अब यह रोगा भोना छोड़ दा। देखो मैं जीवित हूँ। तुम्हारे सामने प्रत्यक्ष गढ़ा हूँ। कही भी मेरा बाल बाँका नहीं हुआ है। मर्ने की बातें सदा सच्ची रही हुआ करता। राग करा और फिर से वस्त्राभूषण धारण करा।”

ठाकुराईन ने कहा —“यह सब नकली बातें हैं। मेरे प्राण नाथ तो कमी के परलोक में प्रस्थान कर चुके हैं। तुम कोई भूत हो, जो मेरा सर्वोत्तम नष्ट करने के लिए ठाकुर साहब का स्वर्ग पर कर आये हो किन्तु तुम्हारी यहाँ नहीं चलेगी। मैं इतनी भोली नहीं हूँ। मेरा मर्ना कभी गला नहीं हो सकता। चले जाओ यहाँ से!”

ठाकुर साहब न हर तरह से उसे समझाने की कोशिश की, किन्तु वह न मानी और पतिदेव के जीत जी रक्षाया भोगने लगी।

मर्ने का दरय जिस प्रकार शनिक होता है, जगत का दरय भी उसी प्रकार शनिक होता है। जो व्यक्ति इस क्षण मर्गुरता के तन्त्र को हृदयंगम कर लेता है, वह संसार की मोह माया से मुक्त हो सकता है।

५—विचारकता

महानुभावो ।

मानव जीवन में भावों का बहुत अधिक महत्त्व है। भाव प्रत्येक मनुष्य में होते हैं—किसी में अच्छे किसी में बुरे। बुरे भाव मनुष्य को विनाश की ओर ले जाते हैं और भले भाव विकास की ओर। बुरे भाव विकार कहलाते हैं और भले भाव विचार।

भेद विज्ञान और क्षण भंगुता विचारों के ही प्रकार हैं, जो आत्मा के विचारों को नष्ट करने में सहायक बनते हैं।

विकार से मनुष्य उदरभर (पट्ट) बनते हैं और विचार से विश्वभर। महापुरुष विश्वभर होते हैं। उनका हृदय अत्यन्त विशाल होता है। कहा है—

“अयं निजं पद्मे वेत्ति

गणना लघुचेतसाम् ।

उदार चरितानां तु

वसुधैव कुटुम्बकम् ॥”

यह अपना है और यह पराया है—एसा सङ्चित (तुच्छ) मनोवृत्ति वाले हा सोचा करते हैं। उदार चरित्रों के लिए (महात्माओंके लिए) तो सारी पृथ्वी ही कुटुम्ब के समान होती है।

दानवता के सींग पूँछ नहीं होते, न रग-आकार होते हैं। विकारों से ही मनुष्य दानव बन जाता है और विचारों से दानव भी मानव बन जाता है। विकारों ने मानव रावण को दानव बना लिया था और विचारों ने दानव चारुभीकि को मानव क्या महर्षि बना दिया था।

विकार द्वेष पैदा करते हैं और विचार प्रेम। विकार नरक में ले जाता है और विचार स्वर्ग में। इसके लिए राजर्षि प्रसन्न चन्द्र का शास्त्रीय दृष्टान्त समझने योग्य है।

महाराज श्रेणिक अपने अंतपुर को तथा सभी राज कुमचारियों को साथ लेकर एकबार भगवान् महावीर की वंदना के लिए वन में जा रहे थे। रास्ते में उनकी दृष्टि ध्यान मग्न राजर्षि प्रसन्न चन्द्र पर पड़ी। मन ही मन उनकी प्रशंसा करते हुए महाराज श्रेणिक भगवान् महावीर के समीप जा पहुँचे।

पहुँचकर नमन किये। वंदना की। यथास्थल बैठ गये। धम देशना सुनी। सुनने वाली परिपट्ट के विदा होते ही फिर से एकबार वंदना करके भ० महावीर से उन्होंने पूछा —

“भगवन् ! आज रास्ते में एक ओर मैंने राजर्षि प्रसन्न चन्द्र को ध्यान मुद्रा में देखा है। मैं जानना चाहता हूँ कि उनकी गति क्या होगी।

भगवान् बोले — तुरी लागी राजन् ! यदि इसी क्षण उनका देहा त हो जाय तो वे पत्नी नरक में जायगे।”

श्रेणिक ने सार्थक पछा —

“क्या फरमा रहे है भगवान् ! पहली नरक म !”

आश्चर्य में और भी वृद्धि करते हुए भगवान ने उत्तर

दिया —

‘नहीं, दूसरी नरक म !’

फिर उन दानोंम इस प्रकार बात चीत हुई —

“क्या दूसरीम ?

“नहीं - नहीं, तीसरीम ।”

‘तीसरी नरकमे ?’

“नहीं राजन ! चौथी नरकमे ।’

“मुझ कुछ समझमें नहीं आरहा है भगवान् ! क्या यह बात आप राक्षसि मसनचद्रक ही धारेमे कह रहे है ?’

“जी हाँ -हीक धारेमे । इस समय यदि उनके प्राण छूट जायें तो वे पाँचवाँ नरकमें जायगे ।’

“क्या इतने प्रबल ध्यानका फल यही है कि उ ही ध्यानीको पाँचवीं नरक मिले ?

“यह बात तो पुराना होगई है राजन् । अब ता वे छठवाँ नरकके योग्य ही कहे जा सकते है ।’

“क्या छठवाँ नरकके योग्य ?’

“नहीं-नहीं, अब तो वह समय भी बीत चुका है । इस समय यदि वे प्राण छोड़ें तो उन्हें केवल अन्तिम नरकमे—सातवाँ नरकमे ही स्थान मिल सकता है ।’

उस दिन महाराज श्रेणिक के प्रभुन विचित्र चरन मुन कर चितना आश्चर्य हो रहा था, उतना उन्हें जीवन म पहले कभी

न हुआ था। राजर्षि प्रमत्त चन्द्र राजपाट छोड़ कर अकिंचन बने थे—तपस्वी बने थे—त्यागी बने थे—ध्यानी बन थे और इतने पर भी उनके लिए केवल सातवीं नरक ही स्थान हो अन्यत्र नहीं। इस बात पर उनका विश्वास नहीं हो रहा था, परन्तु केवल मानीके धवन भी तो अविश्वसनीय नहीं होते—अतथ्य नहीं होते। उनका अपना हृदय इस विषयमें कोई निणय नहीं कर पा रहा था। थोड़ी दूर तक वे मौन बैठ रहे। उन्हें प्रतापदुरानका भी साहस नहीं हो रहा था फिर भाषण सोचकर कि आठवाँ नरक तो होती ही नहीं—किसी तरह साहस बटोर कर धीरेसे पूछा — 'भगवन् ! क्या ध्यानका फल नरक होता है ?'

भगवानने धीरे गम्भीर वाणार्म उत्तर दिया —“राजर्षि ! ध्यान का फल नरक ही होता है स्वर्ग भी होता है और मोक्ष भी।”

“सा कसे ?

ध्यान चार प्रकारका होता है—आरा, रौद्र, धम और शुक्ल। प्रारम्भिक दो ध्यान नरकमे ले जाने वाले हैं और अन्तिम दो स्वर्ग मोक्षार्म। राजर्षि प्रमत्तचन्द्र आरा रौद्र ध्यानम रमण कर रहे थे और उनके भाषण क्रमशः कालुष्यकी चरम सीमा पर पहुँच गये थे, *सीलिए मैंने वह सप्तम नरकगामी बतलाया था, पर तु अब उनकी धनकी आत्मा नरकमे

रही है। यदि हम समय ठीक ढङ्ग में ही जाय तो वे सर्वार्थ सिद्ध नामक पौधे अनुत्तर रिमानम पैदा होंगे।

भगवान् द्वारा किये गये इस स्वीकृति को गुन पर महाराज की जानमें जाग आ गई, फिर भी अपनी विज्ञप्ति को वे राजन सवे। पूत्रा — भते। साधु मनके बाद आत्मीय ध्यान का अवसर राजपि प्रमोदका कंस मिल सहा होगा ?”

भगवान् बोले — “राजन ! जब आप प्रयत्न सुननेके लिए इधर आ रहें हैं तभी आपके दो राजकर्मचारी इस तरह बातें करते हुए राजपि निकटसे हो कर गुजरें। पहले कहा कि धर्म है, राजपि को जि होंन आत्मकल्याण की साधनाके लिए राजसिंहासनका गृही गृही त्याग कर दिया। इस पर दूसरेने अपनी असहमति प्रकट करते हुए कहा कि यह फौज सा बड़ा काम कर डाला। छोट-से अनुभवहीन राजपुत्रको गद्दी सम्हाला दी और शत्रुओंन जय यह धान सुनी तो तुरन्त उस राज्य पर चढ़ाई कर दी। घन-घोर युद्ध ठा हुआ है यहाँ। यद्यपि मैत्रिक प्राणपणमे जूझ रहे हैं, परन्तु विजय अनिश्चित है और ये हैं कि आत्मकल्याण करनेम लगे हैं—राज्यरक्षा जाये भाइय ! इन्हें उसकी क्या चिन्ता ?

यह सुनते ही राजपि द्वेष और क्रोधके चशीभूत होकर शत्रुओंसे मानसिक समाम करने लग गये। उनकी आत्मा क्लृप्त हो गई और क्रमशः उनकी कालिमा बढ़ती गई और

इसी अनुपातमें आत्मा रौद्र ध्यानके द्वारा वे पत्नी, दूसरी, तीसरी आदि नरकमें जाने की योग्यता प्राप्त करते हुए सातवीं नरकमें ले जाने वाले कमदलोंका समूह तक कर बैठे ।’

महाराज श्रेणिक —“भते ! यह बात तो समझम आ गई , परन्तु उनकी विचारधाराने पलटा कैसे ग्याया ? से भी बता दीजिये, जिससे कि मेरी जिज्ञासा पूरी तरह शांत हो जाय ।’

भगवान् बोले —“शत्रुओं से मन ही मन सम्प्राप्त करते हुए राजर्षिने जब देखा कि अपने पाम कोई शस्त्रास्त्र शेष नहीं रह पाया है, तब क्रुद्ध होकर उन्होंने अपने मस्तक पर रखे हुए सोनेके मुकुटका ही शस्त्रकी तरह प्रयुक्त करनेका निश्चय किया । अपने इस निश्चयके अनुसार ज्यों ही उन्होंने अपने मस्तक पर हाथ रखा, त्यों ही उन्हें भान हुआ कि मैं राजा नहीं, एक प्रव्रतित साधु हूँ । मेरे मिर पर मुकुट तो गया, केश भी नहीं है । यह सम्प्राप्तस्थल नहीं, तपोवन है । न जाने किस मोह मायाके चक्कर में पड़ कर मैं प्रभुस्मरण की जगह शत्रुस्मरण करने लगा । हाय ! हाय ॥ मरणके बाद न जाने अब मेरा कौन सी गति होगी । इस तरह पश्चात्तापकी अग्निमें जलते हुए उनके कमदल क्रमशः क्षीण होने लगे । उनकी आत्मा शुद्धसे शुद्धतर हान लगी ”

भगवान् ऐसा सम्प्राप्त ही रहे थे कि दूरसे द्रव्य दुःखुभिर्भी ध्वनि सुनाई पड़ी । उसे सनते हुए वे बोले —“राजन् ।

दिये। प्रसन्नचन्द्र की आत्मा अब पूर्ण चन्द्रकी तरह प्रसन्न और उज्ज्वलतम हो गई है। शुक्ल ध्यानकी चरम सीमा पर पहुँच कर उन्होंने केवल ज्ञान प्राप्त कर लिया है, जो मोक्षका सर्तिफिकेट है। जिसे केवल ज्ञान प्राप्त हो जाता है, उसे उसी भवमें आयुष्यके पूण होते ही मोक्षलक्ष्मी धरण कर लेती है। राजर्षिके केवल ज्ञान की सूशी में ही देवगण दुःदुभि घजा रहे है जिसकी गम्भीर मधुर धानि यहाँ तक सुनाई पड रही है।”

कहनेका आशय यह है कि विकारोंकी शक्ति जितनी प्रबल होती है, विचारोंकी शक्ति भी उतनी ही प्रबल होती है। अब तक विकारोंके चक्करमें पड़ कर आप और हम सब धौरासी लाख जीव योनियोंमें भटकते रहे हैं—जन्म, जरा, मृत्यु प्राप्त करते रहे हैं, परन्तु अब हमने मानवयोनि प्राप्त की है, तो हमे इससे पूरा लाभ उठा लेना चाहिये।

मानव-योनि म रह कर मनुष्य राजर्षि प्रसन्नचन्द्र जी की तरह सातवाँ नरकमें भी जानेकी योजना बना सकता है और मोक्षमें जानेकी तैयारी भी कर सकता है। विनाश भी कर सकता है—अपनी आत्मा का और विकास भी। ये दोनों माग हमारे सामने है। हम दोनों माग पर चलनेकी शक्ति रखते हैं। शास्त्रकार कहते है —

‘जे कम्मे सुरा

ते धम्मे सुरा ॥’

जो कर्म करनेम प्रबल पराक्रम दिखा सकते हैं, वं धर्म-क्षेत्रमें भी प्रबल पराक्रम दिखा सकते हैं। एक रास्ता विनाशका है और दूसरा विकासका।

यह तो निश्चित है कि हम दोनों मार्गों पर एक साथ नहीं चल सकते। चलनेके लिए हम कोई एक ही मार्ग चनना होगा।

मैं समझता हूँ, विनाशका मार्ग अपनातेको कोई तैयार न हागा। सभी विकासका मार्ग ही पसन्द करेंगे, किन्तु केवल पसन्द करनेसे काम न चलेगा। उस पर हमें चलना भी पढ़गा। क्या आप सब लोग उस पथ पर चलनेके लिये तैयार हैं? यदि 'हैं' तो फिर विचार छाड़िये—विचार अपनाइये। विचारकतासे ही आत्माका उद्धार हो सकता है।



६—सदाचार

आचारनिष्ठो ।

दुनिया भर के सभी धर्म शास्त्र एक तरहके आचारशास्त्र हैं । आचार धर्मका मुख्य अंग है । जैनोंके पैतालीस आगम अथवा बत्तीस सूत्रांमं सबसे पहला 'आचारगगसूत्र' है । हिन्दुओंके शास्त्र कहते हैं —

“आचार प्रथमो धर्म ॥”

आचार ही सबसे पहला धर्म है । आचार मानवताकी पहली शक्ति है । मनुष्य कितना भी विद्वान हो—बुद्धिमान हो—सम्पत्तिवान् हो, परन्तु यदि वह आचारवान् नहीं है, तो जगत्में प्रतिष्ठा नहीं पा सकता । यों तो करोड़ों मनुष्य दुनियामें पैदा होते रहते हैं और मरते रहते हैं, परन्तु दुनिया कबल उन्हींको पहिचान पाती है, जिनका जीवन सदाचारी होता है ।

यदि यह कहा जाय तो भी कोई अत्युक्ति न होगी कि आचार ही वास्तविक जीवन है । एक शायरने कहा है —

हंसके दुनियामें मरा,

कोई कोई रोके मरा ।

चिदगी पाइ मगर

उसन जो कुछ होके मरा ॥



भला न किया जाय तो क्या पशु पक्षी मन कर भलाई की जायगी ?

कहते हैं, भारतवर्ष कभी एसा भी समय रहा है, जब यहाँ सेवाके साधन ग्यून थे, पर सेवाने क्षेत्र नहीं थे। आज वैसा नहीं है। देशमें गरीबी, भुखमरी बेकारी, बीमारी आदिका आच बोलवाला है। इस प्रकार परोपकारका क्षेत्र पद पर दिखाई देता है। सेवाके साधन भी काफी हैं। हमें इन दोनोंका मेल बिठाना है। माध्यमे लिए पूरी शक्तिके साथ साधनों का उपयोग करना है।

महर्षि व्यासने सभी शास्त्रों का सार परोपकार बताया है। जैसा कि किसीने कहा है —

‘अष्टादश पुराणेषु,
व्यासस्य वचनद्वयम्।

परोपकार पुण्याय,
पापाय परधीनम् ॥’

उन शास्त्रोंमें मित्रता पर खूब जोर दिया गया है। इसका क्षेत्र मनुष्यों तक ही सीमित नहीं रखा गया, प्राणिमात्रसे मित्रता करने की प्रेरणा की गई है —

“मित्री में सव्वभूएसु ॥”

इसी सूक्तिके भाव हिन्दीकी एक कवितामें भी प्रकट हुए हैं —

‘मैत्री भाव जगतमें मेरा,
सब जीवोंसे नित्य रहे ॥

हमारी किसके प्रति कितनी मित्रता है, यह जाननको कसौटी परीपकार ही है। हम यदि सकट में अपने मित्रकी सहायता न करें तो हमारी मित्रता कैसी ? सदानुभूति सेवा और सहायग के द्वारा ही मित्रता हमेशा प्रकट की जाती है।

यदि हमारे हृदयम मित्रता का अमृत भरा है, तो हम कभी किसीको धोखा नहीं दे सकते—दुकान पर बैठ कर मूठे माप तौल नहीं कर सकते—मूठ बोलकर दूसरोंको ठग नहीं सकते—किसीकी अमानत हजम नहीं कर सकते—किसीके साथ कभी विश्वासघात नहीं कर सकते—किसी की चोरी नहीं कर सकते—किसी को पित्रूल कष्ट नहीं दे सकते। मतलब यह कि हम सारा घुराइयोंसे बच सकते हैं और सारी भलाइयोंको जीवनमें छतार सकते हैं। मित्रता ही वह माध्यम है जो हम दुराचारस सदाचार तक ले जाता है।

मन्त्री या 'यायाधीश की कुर्सी' पर वही बैठ सकता है, जिसमें उस पदके कर्तव्य निभानेकी योग्यता हो। जो व्यक्ति अयोग्य सिद्ध होता है, उसे उस कुर्सीसे तुरन्त अलग कर दिया जाता है। मानव शरीर भी एक कुर्सी है जिस का अवलम्बन लेने वालेम मानवताका—परीपकारका—मित्रताका अस्तित्व अनिवाय है। मानव शरीर पाकर भी जो व्यक्ति मानवीय कर्तव्य नहीं निभाता उसे अगले जन्म योनि बदलनी पड़ेगी— तियञ्च गति या पापाकी प्रबलता हुई तो नरक गति अपनाती पड़ेगी। इसलिए मानवीय कर्तव्योंका पालन सदा तत्परता पूरक कीजिये।

मिट्टीमें सोना छिपा हो, तब तक वह मिट्टीके ही भाव धिकेगा। मिट्टीसे अलग करने पर ही उसका असली मूल्य मिल सकेगा। बुद्धिमानी यही है कि मिट्टीसे सोना अलग कर लिया जाय। हमारा तन, मन, धन और जीवन भी क्षण भंगुर होनेसे तुच्छ है—मिट्टी है। परोपकार ही इस मिट्टीम छिपा सोना है। जैसा कि किसी नीतिकारने कहा है —

“परोपकरण काया—

दसारात्सारमाहरेत् ॥’

इस असार शरीरसे परोपकार रूपी सार निकाल लेना चाहिये। तन मन धनकी मिट्टीमेंसे परोपकार रूपी सोना निकाल लेना चाहिये। मतलब यह कि इन सब का उपयोग हम परोपकारके माग में करते रहना चाहिये। यही धर्म है। जैसा कि रामचरित मानसमें कहा है —

“परहित सरिस धर्म नहि भाई।

परपीडा सम नहि अधभाई ॥’

परोपकारके समान दुनियामे कोई धर्म नहीं है और परपीडा (दूसरोंको दुःख पहुँचाने) के समान कोई पाप नहीं है।

यदि हमारा जीवन आहार, निद्रा, भय और मैथुनम ही चीत जाय तो पशुओंसे हममें कोई अंतर नहीं रहेगा। धर्म ही है, जो हमें पशुओंसे पृथक् करता है। सरकृतके एक कविने ठीक ही कहा है —

आहार-निद्रा भय मैथुनञ्च

मृसामाय मेतत्पशुभिनराणा

सहानुभूति का पवित्र दद जगाती रहेगी, जिससे कि आपको परोपकारकी प्रेरणा मिलती रहे।

यदि आप बनवान हैं, तो अपने धनपे द्वारा घृद्धों, विकलांगों और अनाथ छात्रों को सहायता कीजिये—यदि आप मनस्वी हैं, तो विश्वकी उलझी हुई समस्याओं पर चिन्तन करके लोगोंको घता दीजिये कि वे किस प्रकार सुलझाई जा सकती हैं—यदि आपका शरीर शक्तिशाली है, तो उसके द्वारा दुष्टों और दुश्मनों से अपने गाँवकी, प्रांतकी और राष्ट्रकी रक्षा कीजिये—यदि आप बुद्धिमान हैं तो लोगोंको उचित सलाह दीजिये।

व्यापारी लोग अपने घटी खाते काली स्याहीसे लिखते हैं। यह स्याही ऐसी होती है कि जल्दी नहीं सूखती। इसके लिए एक अलग छेद वाली दवातमें रखी हुई रेतीका प्रयोग करते हैं। रेती जब स्याही को सोख लेती है, तब उसे फिर से उसी दवातमें डाल देते हैं।

इस प्रक्रियामे पूरी सावधानी रखी जाती है कि कभी कहीं रेती का एक कण भी इन्वर-उधर गिर न पड़े, जिससे कि रेतीके प्रत्येक कणका उपयोग हो सके।

क्या मैं पूछ सकती हूँ कि रेतीके कण बचाने के लिए जितनी सावधानी रखी जाती है, जीवनके क्षण बचाने के लिए उतनी सावधानी क्यों नहीं रखी जाती? रेती के कणोंका मूल्य अधिक है या जीवनके क्षणोंका?

यदि हम मानते हैं कि जीवन के क्षण ही अधिक मूल्यवान् हैं, ता हमें रतीक प्रत्येक क्षणकी तरह जीवनके प्रत्येक क्षणका सदुपयोग करना चाहिये ।

सदुपयोग का अर्थ है—सत्कार्य में उपयोग । कोई विवाहित युवक मर जाय तो उसके परिवार वालों को सात्त्वना देने जाना भी एक सत्कार्य है, कि तु यह सत्कार्य आज एक रूढ़ि बनकर किस तरह दुष्प्रभाव बदल गया है ? देखिये ।

यदि कोई पच्चीस वष का नव युवक चल बसा हो तो समाचार सुनते ही दूर दूरके लाग उसके घर पर 'बठने' (सहानुभूति प्रगट करने) के सहान आते हैं और लड्डू उड़ानेमें मग्न जाते हैं । किसी कविन ठीक ही कहा है —

“मूँछे ऊषी कर करके वे
 बाँह चढा कर खाते हैं,
 नहीं समझर्म आती,
 उनको लड्डू कैसे भाते हैं ॥

इधर घरमें कुहराम मचा है—पत्नी आँसू बहा रही है—माँ रो रही है—बाप विलाप कर रहा है—बच्चे चिला रहे हैं—बहिन बिलस रही है—भाई कराह रहे हैं और एक आप ही, जो नुकती निगल रहे हैं—लड्डूओं पर हाथ साफ कर रहे हैं । उस श्मशानकी सी भयंकर मनहूस परिस्थितिमें आपकी जीभके स्वाद कैसे का मकता है ? लड्डू गलेके नीचे

मैं पूजना चाहती हूँ कि आपकी क्या यही धार्मिकता है—क्या यही सहानुभूति है—क्या यही कर्तव्यपरायणता है—क्या यही सहयोग है—क्या इसीका नाम सात्वतना है। इस विषयमें वूटोंकी तो बात ही क्या ? अन्ते पढ़ लिये लोग भी मूल साधित होते हैं—उनके भी दिमाग से कुरूपद्वियोंका कूड़ा-कचरा निकल नहीं पाता ।

इस किरियावर या मौसर की रस्म अदा करने के लिए बहुत से दुग्गी परिवारों का गरीबी के कारण अपना टूटा-फूटा मकान तक गिरवी रख देना पड़ता है और इस तरह रज के दुख के साथ ही रज का दुख भी बहन करना पड़ता है ।

मेरे कहने का आशय यह नहीं है कि आप उस दुग्गी परिवार के घर पर सहानुभूति प्रकट करने जाना बन्द कर दें। जाने में कोई हर्ज नहीं, परन्तु माल मत खाइये। यदि आप लड्डू खाने से इन्कार कर देंगे तो वे जबदस्ती आपके मुँह में ठूसेंगे नहीं। हाँ, यदि आप दूसरे गाँव से आये हैं तो घर वाले आपको भूखा भी नहीं रहने देंगे। ऐसी परिस्थिति में घरवाले जैसे सादा भोजन करते हैं, वैसे आप भी सादा भोजन ही कीजिये—मिठाई को मत छूइये ।

घरवाले भी दिल से मिठाई नहीं बनवाते, क्योंकि वह कोई खुशी का अवसर नहीं होता। वे नुकता करते हैं इसलिए कि समाज उसे चाहता है—अथवा इस डर से कि न करने पर नाराज होकर समाज कहीं हमारे परिवार का बहिष्कार न कर दे ।

आँसू बहाने वालों के आँसू पोंछने का और उन्हें धीरज देने का दायित्व आपका होता है। उस विधवा बहिन के घर पर आपको भाई बनकर ही जाना है, दुरमन धन बर नहीं।

मेरा क्याल है कि यदि किसी पथ की जीभ पर लड्डू के लिए लार न टपक—यदि सभी लोग सच्चे दिल से लड्डू के प्रति नफरत करने लगें—यदि ऐसे प्रसंग पर कोई भी नुकता खान को तैयार न हो तो यह कुप्रथा तुरन्त घट हो जाय। यदि कोई खान बाला न रहेगा तो कोई नुकता करेगा ही क्यों ?

यह तो एक उदाहरण मात्र है। न जान उसी समाज में कितनी कुप्रथाएँ चल रही होंगी, जिनका मूल रूप अच्छा था, परन्तु कालांतर में विकृत हो जाने से आप उन्हें छोड़ना या बदल देना ही परम कर्तव्य हो गया है।

अच्छे साहित्य का स्वाध्याय भी हमारा कर्तव्य है। अपना चरित्र पवित्र बनाने के लिए हमें महापुरुषों के जीवन-चरित्र पढ़ने चाहिये।

महाजनों येन गत स पथा ॥

अपना सहा माग क्या है ? वही, जिस पर स महापुरुष गये हैं। अपने जीवन को उनके जीवन से मिलाते रहिये। इससे अपने दोषों की जातकारा हागी।

आप दृष्टजन्में अपना मुँह दरते है। यदि वही ५।

महापुरुषों का जीवन चरित्र भी एक दपण है, जिसकी आर देखने से हमें अपने जीवन के विकार, कलङ्क दोष साफ साफ दीख पड़ेगे। उस परिस्थिति में हमारा कर्तव्य है जायगा कि हम ज्ञान रूपी तौलिये की भावना के जल में भिगोकर उससे अपने जीवन के दुगुण रूपी दाग मिटा डालें।

उपकारी का उपकार किया तो कोढ़ बढ़ी बात नहीं हुई। महापुरुष तो अपकारियोंका भी उपकार करते हैं। वे कहते हैं -

जो तो बूँ काँटा बुए,

ताहि बोग्य तू फूल।

तोहि फल को फूल है,

बाको इ तिरमूल ॥

यदि तुम भराई करोगे तो तुम्हें उसका फल भला ही मिलेगा। बुरा फल मिलेगा उसे जिसने बुगइ की है। कुदरत के घर में अघेर नहीं होता—निष्पक्ष थाय होता है।

वीर बुद्ध, ईसा, मुहम्मद आदि महापुरुषों के कोरे नाम स्मरण से कुछ न होगा। हमें चाहिये कि उनके पवित्र चरित्रों का स्मरण करें और उनके पद-चिह्नों पर-चलन की कोशिश करें।

एक दीपक की लौ से हजारों दीपक जलाये जा सकते हैं। ठीक इसी प्रकार एक महामानवका चरित्र हजारों महामानव पैदा कर सकता है। जरूरत है—दीपक से दीपक का संयोग करने की। अपनी आत्मा को परमात्मा की ओर उन्मुख करने की।

स्वाध्याय दो प्रकार का होता है—आँसों से और अतस्तल से। यदि आप महापुरुषों के रूपे हुए जीवन चरित्र केवल आँसों से पढ़ेंगे तो आपको पढ़ने का अभ्यास मात्र होगा और अतस्तल से पढ़ेंगे—नम्र होकर पढ़ेंगे तो आपको बढने का अभ्यास होगा—आगे बढने का अभ्यास होगा— विकास के माग पर बढने का अभ्यास होगा।

स्वाध्यायका एक दूसरा भी अर्थ होता है—स्व (आत्मा) का अध्ययन। अब तक आपने स्कूलों में—कालेजों में इतिहास, भूगोल, गणित और भौतिक विज्ञान का अध्ययन किया है— जड़ पदार्थों का रहस्य समझा है—बाहर ही बाहर दगा है और दूसरों के धारे में ही जानकारी हासिल की है, परन्तु अब जरा आत्मा का अध्ययन कीजिए—आत्मा का इतिहास खोजिए कि वह कहाँ से आइ है और कहाँ जानेवाली है— भीतर झाँकिये—अपनी मनोवृत्तियों का अध्ययन कीजिए और अपने धारे में जानकारी हासिल कीजिए। सोचिए कि आपका लक्ष्य क्या है—आप कहाँ खड़े हैं और आपको कितनी मंजिलें पार करके कहाँ जाना है—कहाँ पहुँचना है।

बहुत से लोग अमुक तरह के प्रियाकाण्ड ता नियमित करते हैं, पर अपना जीवन नहीं सुधारते। कबिबर बिहारी छाट न ऐसे ही लोगों का विचार करते हुए कहा है —

मन काँचै नाचै वृथा
साँचै राधै राम ॥”

—बिहारी सतसई

जब तक मन कच्चा है तब तक मारी दौड़ धूप व्यर्थ है। मन सन्धा हो तभी राम प्रसन्न होते हैं। जीवन भर माइ हाथ म रखा, पर काम म नही लाये उसे तो कमरा माफ नही होगा। कपरा निकालने के लिए माइ लगानी पड़गी। पूवभवों से लेकर इस भव तक धानक धान फाड़ दिये होंगे और हचारा-लाखों मु हपत्तियाँ हाथ मे ले लेकर या मुँहपर बाँध बाँध कर खादी होंगी पर अतक सामायिक नहा आई-समभाव नही आया—मन शुद्ध नही हुआ।

पिछले अनंत भवों से माला० किरात आ रहे हैं, परंतु अब तक मनका नही किराया—उसे बश मे नही किया तो क्या लाभ हुआ ? कबीर साहब कह रहे हैं —

“माला फेरत जुग गया

मिटा न मनका फेर ।

करका मनका डारि दे

मनका मनका फेर ॥”

माला किराने में काइ हज नही है, परंतु उसके साथ साथ हम अपना मन भी ससार के विषयों से किराना होगा, उसे परमात्मा में लगाना हागा। महापुरुष ने जो कुछ किया— जो कुछ कहा, वैसाही करना हागा। मिठाई का नाम अपने से

नहीं उसे खाने से ही पेट भरेगा। ठीक उसी प्रकार महा पुरुषों के स्मरण मात्र से नहीं उनके जीवन का अनुसरण करने से ही आत्म कल्याण होगा। सदाचार से ही बद्धार होगा।

मन्दिर या स्थान में, मस्जिद या गिरजा घर में ही नहीं, अपन घर और वाचार में भी सदाचार साथ रखिये।

सदाचार का अर्थ है—स तों का आधार—सत्पुरुषों का व्यवहार—सज्जनों का वाय। यदि जीवन में सदाचार की सुगन्ध भर जाय, तो आप ही आपका जीवन आकषक हो जाय—दूसरों के लिए अनुकरणीय आदर्श बन जाय।

क्या मैं आशा कर सकती हूँ कि आज से ही आप अपने जीवन में सदाचार को उतारने का प्रयास प्रारम्भ कर देंगे ?



७—अनासक्ति

वीतरागानुयायियो ।

उड भारी पुण्य प्रतापसे ही कभी किसी जन्ममें वीतरागका चाणी सुनने का स्वर्णावसर प्राप्त होता है । सुनने से क्या लाभ होता है ? इसका उत्तर शास्त्रकारोंने इन शब्दोंमें दिया है —

‘सोचा जाणइ कलाण

सोच्चा जाणइ पापम ।

उभयपि जाणइ सोच्चा,

जं सेय त समायरे ॥’

—दशवैकालिक ४-११

सुनकर ही मनुष्य जान सकता है कि धर्म क्या है और पाप क्या है । धर्म और पापका रहस्य समझ कर इन दोनोंमें से जो अच्छा हो—कल्याण करने वाला हो, उसे अपना लेना चाहिये ।

मनुष्य पाप क्यों करता है ? राग द्वेषके कारण । द्वेष तो बुरा है ही—बड़वा भी है, परन्तु राग मीठा होकर भी बुरा है, इसलिए वह द्वेषसे भी अधिक भयकर है । अरिहन्त देवको इसीलिए ‘वीतराग’ कहा जाता है, (वीतद्वेष नहीं) कि उन्होंने मांठे रागकी भयकरता को पहिचानकर सम पर विजय प्राप्त कर ली थी । रागका त्याग कर दिया था ।

राग वृग्न पर द्वेष तो करने और दूर जाना है। द्वेष होता है इसलिये है कि हम किसी पर राग रखते हैं। यदि आपका एक पुत्र कमाऊ हो और दूसरा साऊं तो आपका एक के प्रति राग होगा और दूसरे के प्रति द्वेष। यदि आप पहले के प्रथम राग न रखें तो दूसरे के प्रति द्वेष भी न रहेगा। दोनों पुरोंक प्रति ममभाव रहेगा।

रागके हा मयता भाव, रति आसक्ति आदि भिन्न भिन्न नाम हैं। इनमें दूर रहना अनासक्ति है।

आसक्ति छूटी है—सम्यक्त्व से—विवेक से। अभीष्टको जीव समझना मिथ्यात्व है। जीवको अभीष्ट समझना भी मिथ्यात्व है। जीव को जीव और अभीष्टको अभीष्ट समझना सम्यक्त्व है। जड़का जड़ और चेतनका चेतन समझना विवेक है। स्वर्गमें देवोंके रत्नत्रयित विमान भी जड़ होनेसे मिट्टीकी तरह तुच्छ हैं और अमीबा (बैज्ञानिकोंकी मायतानुसार एक प्रकारका सबसे छोटा प्राणी) जीव प्राणी भी सचेत होनेसे आदरणीय हैं। सङ्घट्ट मनुष्य अमीबाको भी कष्ट नहीं ना चाहेगा और दूसरी तरफ रत्नत्रयित विमानोंकी भी पर्याह ही करेगा।

जड़ पदार्थोंकी महत्वपूर्ण समझकर अविवेकी-व्यक्ति ममता का चाल फैलाता है और मकड़ी की तारों पर चलने के लिये समय भी वह खोजने करके यह

आज यह सब यहाँ छूट रही है। इच्छा न होते हुए भी इसे छोड़कर मुझ जाना पड़ रहा है। विवेकी मनुष्य मृत्यु शय्यापर भी यही सोचेगा कि सब पुद्गल ही पुद्गल है। इनमें से एक अणु भी मेरा नहीं है। मैं इस दुनियामें अकेला आया था और अकेला ही जा रहा हूँ। यथाइये ऐसे व्यक्ति को दुःख क्यों होगा ?

रोटीने टुकड़के लिए कुत्ते ही लड़ते हैं। यदि मनुष्य भी किसी जड़ पदार्थकी प्राप्तिके लिए सघप करे तो कुत्तोंसे कम पत्र ही क्या रहे ?

आज विज्ञानन अणुओंकी शक्ति का पता लगा लिया है। वैज्ञानिक कहते हैं कि प्रत्येक अणुम सूयक समान प्रचण्ड शक्ति भरी पड़ी है, तो क्या आत्मामें कोई कम शक्ति है ? यदि वैज्ञानिकोंके शरीरमें आत्मा न होती तो अपने मुर्दे शरीरसे क्या इस तथ्यकी रोज वे कर सकते थे ? कभी नहीं। इसलिए मानना चाहिये कि यदि एक अणु में सूयके समान शक्ति है, तो आत्मामें अनन्त सूयोंके बराबर शक्ति है। तभी तो आत्मा अनन्त ज्ञान अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र और अनन्त वीर्यकी धारण करने वाली मानी जाती है।

यदि कहीं कोई चमकीला पुराना पत्थर मिल जाय तो उस पर पुरातत्त्ववेत्ता लट्टू हो जाते हैं। पड़ीसे छोटी तक पसीना बहा कर उसका इतिहास ग्रापते हैं। उस पर दुनिया-भरके पत्रोंमें लेख छपते हैं। मैं पूछती हूँ कि क्या कम पत्थरसे भी

आत्मतत्त्वका महत्त्व कम है ? यदि नहीं, तो फिर क्यों आत्मा का इतिहास न ग्योजा जाय ? आप अपनी आत्माको देखें मैं अपनी आत्माको देखूँ । हममसे प्रत्येक व्यक्तिका सामान्यिकम बैठ कर दो घड़ी तक यह चिन्तन करना है कि मैं कौन हूँ—मेरा स्वरूप क्या है—मैं क्या कर सकता हूँ—क्या कर चुका हूँ—क्या कर रहा हूँ और मुझ क्या करना है ! कहाँसे आया हूँ और मुझ कहाँ जाना है ! आदि ।

जैसे हम मिट्टीके मकानमें रहते हैं वैसे ही इस शरीर रूपी मकानमें हमारी आत्मा रहती है । किरायेके मकानमें किरायेदारको कोई आसक्ति नहीं रहती । सरकारी कर्मचारियोंके तथादले होते रहते हैं । न हें हमेशा एक गाँव छोड़ कर दूसरे गाँवमें—एक मकान छोड़ कर दूसरे मकानमें जानेके लिए तैयार रहना पड़ता है । ठीक इसी प्रकार हमें भी एक शरीर छोड़ कर दूसरा शरीर धारण करनेके लिए सदा तैयार रहना चाहिये । इसमें गीना धोना क्या ? यदि इस तरह शरीर के प्रति अनासक्ति पदा हो जाय तो हमें मृत्युका कोई भय न रहे । गीतामें एक श्लोक है —

“वासांसि जीर्णानि यथा विहाय,
 नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
 तथा शरीराणि विहाय जीर्णा
 न्यानि मयाति नवानि देही ॥”

जैसे मनष्य फटे पुराने कपड़ोंको छोड़ कर नये दुसरे कपड़े

ही यह देही (देहमें रहने वाली)

है, त्यों त्यों आत्मा का ज्ञान प्रकट होने लगता है । चार घन-घाती कर्मों के नष्ट होते ही अन्तिम ज्ञान कैवल्य (केवल ज्ञान) प्राप्त हो जाता है । जिसे केवलज्ञान प्राप्त हो जाता है अर्थात् जिसकी आत्मासे कैवल्यकी ज्याति प्रकट हो जाती है, उसकी उसी भयमे मुक्ति निश्चित हो जाती है । अन्तिम चार कर्मोंके क्षय होन तक ही उसे ससारम रहना पड़ता है, फिर वह आत्मा सप्रथा मुक्त हो जाती है ।

मतलब यह कि ज्ञानसे मोक्ष, निर्वाण, वैकुण्ठ, ईश्वर-मात्रिय आदि सब कुछ प्राप्त हो सकता है । हिन्दुओंके शास्त्र भी यही कहते हैं —

“मते ज्ञानान्न मुक्ति ॥”

ज्ञानके बिना मुक्ति नहीं हो सकती— आसक्तिसे छुटकारा नहीं मिल सकता ।

ज्ञानका उपयोग दूसरों के दाप ढूँढने में—द्विद्राचेपण करने में मत कीजिए । आत्मनिरोक्षण में कीजिये । एक मेवाड़ी सन्त के ये वचन याद रखिये —

वी आछाने वी ओछा तो
 वी भोगेगा वारो ।
 वी थूँकीवा वी यूँकीधो
 ये कई कीधो थारो ?
 कर कर वृथा थथ ढूँजा रो ।
 बँडा वगत गमाया सारो ॥

—डा० चतुर सिंह

साधु साध्वियों से कोई भूल हो जाय तो आप लोग निन्दा करन लगते हैं, पर ऐसा नहीं सोचते कि वे भी समाज के ही अंग हैं—समाज में ही पैदा होकर पनपे हैं और साधुवेष धारण किया है। सिर्फ वेप बदलने से ही तो सारे दोष तुरन्त दूर न हो पायेंगे। धीरे धीरे ही सुधार होगा। आप मधुर शब्दों में उन्हें समझाइये तो वे जरूर मान जायेंगे और उन मर्लों से भविष्य में बचने का प्रयत्न करगें। निन्दा करन से कोई सुधार न होगा बल्कि उसकी प्रतिक्रिया होगी। इससे अच्छा तो यही होगा कि आप आत्म निरीक्षण करके अपने दोषों को ही दूर करें। ज्ञानका ठीक उपयोग यही है। हाँ, स्वयं सुधार कर आप दूसरों को सुधारने की सलाह दे सकते हैं।

अतिम ज्ञान प्राप्त करने वाले महापुरुष कुल भी द्विपा कर नहीं रागते। वे अपना सारा ज्ञान दुनिया में बिखेर देते हैं। व्यापारी दान में धन दे देता है, पर धन कमाने के तरीके या अनुभव दूसरों को नहीं बताता। महापुरुष नि स्वार्थ होते हैं, इसलिए उनके हृदय में ऐसी मंजुचित मनोवृत्ति नहीं होती। वे अत्यन्त उदार होते हैं। वे ज्ञान-प्राप्ति के तरीके भी बता देते हैं।

यदि हम जानते हैं कि जड़ की अपेक्षा चेतन का महत्व अधिक है तो हम इस जड़ ससार में डूबना नहीं तैरना चाहिये। जहाज डूबता नहीं, तैरता है, इसीलिए वह दूसरों को भी तिराने में समर्थ बनता है। जहाज पानी में रहकर भी पानी के ऊपर रहता है। तीर्थकरों की उपमा जहाज से दी जाती है।

वे ससार में रहकर भी ससार के ऊपर थे। सांसारिक विषय भोगों से सत्रथा अनासक्त रहते थे। इस प्रकार स्वयं तैरनेवाले बनकर दूसरों को भी तिरानवाले बन गये थे। उनके स्तोत्र में इन्द्र ने कहा था —

“तिनाण तारयाण । बुद्धाण *धोहयाणं । मुत्ताण
मोअगाणं ॥”

हे भगवन् ! आप तीण हैं और तारक भी। बुद्ध हैं और बोधक भी। मुक्त हैं और मोक्षक भी।

जो लोग सजा पाने वाले हैं—अपराधी हैं, वे दूसरों की सजा माफ नहीं करा सकते। जो लोग स्वयं बीड़ी सिगरेट पीते हैं, वे दूसरों को बीड़ी सिगरेट छोड़ने का उपदेश नहीं दे सकते। यदि उसे लोगों ने उपदेश दिया भी तो उसका शोनार्था पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। इसलिए दूसरों को बदलनेके पहले हमें अपने आपको बदलना होगा। बड़े बड़े महापुरुषों ने ऐसा ही किया था। महात्मा गांधीकी वाणीका असर सुनने वालों पर खूब होता था, क्योंकि वे जो कुछ कहते थे उसे पहले अपने जीवनमें उतार लेते थे। हमें भी ऐसा ही करना है।

भोगांकी आसक्तिके कारण कर्त्तव्य नहीं सूझता। हमें ससारमें रहकर भी भोगोंसे अनासक्त रहनेका अभ्यास करना है। कैसे ? तीन दृष्टान्तोंसे यह बात अच्छी तरह समझमें आ जायगी।

(१) नारियल — यह दो प्रकारका होता है—पानीवाला और सूखा। गिरी दोरोंमें दूध, परंतु पानीवालेकी बिपकी रहता है और सूखे नारियलमें यह बिपकी नहीं रहती। काष्ठ से गिरी को बिपकाने वाली यन्त्र क्या है ? गिरीका गीलापन। समारंभ भी समताका गीलापन हमारी आत्माका वसने बिपकाय रहता है। समता छोड़कर हम अनासक्त धन मकते हैं।

(२) घस्र — पहिनेके घस्र भी प्रकार के हात है। सूखे और चिकन (तेलघस्र)। सूखे घस्र पर घल बैठता है तो मकते ही गिर जाती है या उड़ जाती है परंतु जो घस्र तैल से चिकना हुआ गया है उस पर बैठती हुई धूल मकन में नहीं चिपलती। समारंभ भी मोह रूपी तैल से जो आत्मा में चिकनापन आ गया है वह आसक्ति का कारण है। अनासक्त धनन के लिए मोह का त्याग करना पड़ेगा।

(३) गोघर — यह भी दो प्रकार का होता है—गंधा और सूखा। सूखे गोघर का फेंका भी कहते हैं। गंधे गोघर का दीघार पर फेंका जायता यह बिपक जायगा परंतु फेंका फेंका जायता नहीं बिपकेगा, बल्कि दीघार से टकराकर प्रमीन पर गिर पड़ेगा। आत्मा में भी जब बिपकाने का गीलापन रहता है, तब वह संसार से बिपकी गन्ना है और जो गीलापन जब सूख जाता है, तब न बिपकता। इन भी कई तरह आत्मा में सूखी या अनासक्त बनना है।

जो रस्त्र तैल की चिकनाई से रहित होना है, उस पर धूल नहीं आती—एसी बात नहीं है। धूल उस पर भी आती है, पर टिकती नहीं, कट-कटे ही निकल जाती है। प्रसन्नचन्द्र राजर्षि की आत्मा पर सातवें नरक में लज्जाने की शक्ति रखनेवाली कमरज आई थी, परन्तु भावना का कटका लगते ही उड़ गई और उन्हें मुक्ति प्राप्त हुई।

राजर्षि पर जब इतनी प्रगल्भधूल आई थी उस समय उन्हें कैवल्य प्राप्त नहीं हुआ था, परन्तु केवल ज्ञानी अरिहन्तों को भी कमरज नहीं छोड़ती। तेरहवें गुण स्थान में पहुँच जाने पर भी ईर्यापथिकी क्रिया से उनकी आत्मा कलुषित होती रहती है, परन्तु वह कालुष्य एक समय में आता है, दूसरे समय में वेदना प्रदान करता है और तीसरे समय में नष्ट हो जाता है।

जैन शास्त्रों में “समय” काल का पर्यायवाची शब्द नहीं माना जाता। वह तो काल की सबसे छोटी इकाई मात्र है। काल का अतिभाज्य छोटे से छोटा एक अंश ही “समय” के नाम से पहिचाना जाता है।

समय की सूक्ष्मता समझने के लिए इस गणना पर ध्यान दीजिये —

१ युग=५ वर्ष

१ उप=२ अयन

१ अपन=३ ऋतुएँ

१ ऋतु=२ मास

१ मास=२ पक्ष

मे कर लिया जाय तो अनासक्ति की साधना मे सफलता मिल सकती है ।

हिन्दुओं के शास्त्र भी यही कहते हैं —

“मन एव मनुष्याणा,

कारण बन्धमोक्षयो ॥

मनुष्यों के बन्ध और मोक्ष का कारण मन ही है । मन ही भला या बुरा होता है इन्द्रियों भली बुरी नहीं होती ।

एक आदमी चश्मा पहिन कर पर स्त्रियों पर बुरी नजर डालता है और दूसरा आदमी वही चश्मा पहिनकर धर्म शास्त्रों का स्वाध्याय करता है । पहला पापी है और दूसरा धर्मात्मा परन्तु चश्मा निर्दोष है, उसमें न पाप है और न धर्म । ठीक इसी प्रकार मन इन्द्रियों का माध्यम से अन्ते-बुरे काम करता रहता है इन्द्रियों निर्दोष हैं । सारा दोष मन का है । विषय-कषाय के विचार तथा संयोग वियोग या जन्म मृत्यु से होने वाले सुख दुःख के द्वन्द्व मन में ही पैदा होते हैं । द्वन्द्व को मिटाने के लिए मन को बश में कौजिए—संसार में रहकर भी जल में कमल की तरह उससे निर्लिप्त रहने की कोशिश कीजिये ।



८—संगठन का महत्त्व

संघ संगठन ।

समार में जो बड़ी बड़ा योजनाएँ बनाई जाती हैं—बड़ी-बड़ी योजनाएँ होती हैं—बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ होती हैं, वे सब मूल में संघ या संगठन की शक्ति ही काम करती हुई बनती हैं ।

यद्यपि प्रत्येक संगठन का सूत्रधार एक ही पुरुष होता है परन्तु वह अकेला कुछ नहीं कर सकता । वह तो वेपथु किंग बना सकता है—राजा बना सकता है । चलने का वह मूल संगठन का है । संगठन ही अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सक्षम हो सकता है । जोर डालू भी अपने काय संगठन के द्वारा ही सिद्ध करते हैं, ना फिर सज्जनों की तो बात ही क्या ?

मनुष्य निरालम्बा से दीवाल चुनता है, कहीं से सहायता मा सकता है । इसी प्रकार जो मनुष्य संगठन बनने में सक्षम होकर भी मरता है । यदि संगठन का लक्ष्य दुरु है तो सहायता देना ही ठीक नहीं और यदि अच्छे लक्ष्य से संगठन बनाया गया है, तो प्राणा की बाजी लगाकर भी समर्थ बना जानी चाहिये ।

संगठन में मनुष्य तो अलग अलग इकाई हैं, परन्तु इन्हें कूट नहीं होती—मन मिलजुन का गुण है—एक दूसरे के अनुकूल कार्य करने के ।

परन्तु उसकी शाखा-प्रशाखाएँ भिन्न-भिन्न होती हैं। वे विभिन्न शाखा प्रशाखाएँ और टहनियाँ एक दूसरे में मिली रहती हैं और सब मिलकर पड़ की शोभा बढ़ाती हैं। उनकी अपनी शोभा भी वृक्ष का अंग बनने में है। जो टहनियाँ टूटकर जमीन पर गिर पड़ती हैं, उनकी क्या शोभा ? बालों की शोभा सिरमें है। जो बाल काट डाले गये हैं — जमीन पर गिरे पड़े हैं, उनकी क्या शोभा ? दाँतों की शोभा मुँह में है। जो दाँत अपनी पक्ति से अलग हो जाता है उसकी क्या शोभा ? नाखून की शोभा उँगलियों के साथ रहने में है। जो नाखून काट डाले गये हैं — उँगलियों के साथ छोड़कर जमीन पर गिरे पड़े हैं उनकी क्या पूज्यता है ?

ठीक इसी प्रकार मनुष्यों की शोभा भी सगठनमें है। जो मनुष्य सगठनसे अलग हो गया है, उसकी क्या शोभा ? उसे दुनियाँ में कौन पूज्यता है ? कोई नहीं। मरुतमें यह ठीक ही कहा गया है —

“स्थानभ्रष्टा न शोभत

दत्ता कशा नया नरा ॥”

अर्थात् स्थान भ्रष्ट हान पर दाँत, केश, नाखून और मनुष्य शोभा नहीं पाते।

बहुत से लोगोंको एक-दूसरे का प्रेम सहन नहीं होता। सगठन को तोड़नेकी कोशिश करते हैं। लोगोंको एक दूसरेके विरुद्ध भड़काकर फूट फैलानेमें उन्हें आनन्द आता है। उन्हें

लोगों का तुलना इस केशीमे की जा सकती है, जो कपड़ोंको बदलने का ही काम करती है। सुन्दरसे सुन्दर कपड़का बिन्दियोंमें बदल देना ही उसका एक मात्र काम है। दूसरा काम वह जानती ही नहीं।

हां, इससे विरुद्ध स्वभाव वाले भा कुछ लोग हात ड जा कटा मित्त कर सगठनको फिरसे सजयूत बनना काम करते हैं। अपनी निष्पत्तिका न्याय प्रियता प्रेम महाभूमि आदि क प्रभावसे ये लोग तमाम गगड़ शांत कर दिया करते हैं। पर लोकाकी तुलना सुईसे की जा सकता है। सुई बिररी हुई बिन्दियोंको जोड़ कर फवल कपड़ा ही नहीं बनाती बल्कि उन्हें एक सुन्दर पोशाकके रूपमें बदल देती है।

आप इन दोनों प्रकारके लोगों में से किस प्रकारके बनना पसन्द करेंगे? द्वेषी बनना चाहेंगे या मिलनसार? पर बनना अन्ध्रा समझेंगे या प्रेमी? कौंधी होना चाहेंगे या सुई?

मैं चाहती हूँ कि किसी भा सगठनमें कोई व्यक्ति फेधी बनने की कोशिश न करे। सुई बन सके तो अच्छा है, परन्तु न बन सक तो भी कमसे कम कधी न बन।

किसीका चढ़ा न सके तो न चढ़ाये, पर गिराये क्यों? किसीको बुद्ध दे न सक तो न दे पर छीन क्यों? कोई कमाई न कर सके तो न करे पर गमाह क्यों करे? किसीका न कर सके तो न करे, पर अपमानित क्यों करे?

किसीको आप सगठित न कर सकें, तो न करें, पर विघ्नित क्यों करे ? पुण्य न कर मकें तो हर्ज नहीं, पर पापसे बचें—यही बहुत है ।

दो मक्खियाँ थीं । एक चाशनी पर बैठी और दूसरी शकर पर । पहली धिपक गई और दूसरी कुछ खाकर उड़ गई । संगठनके लिए निःस्वार्थ बनना होगा । राघवके हितके लिए कुटुम्बके हितका त्याग करनेको शकर पर बैठने वाली मक्खी की तरह तैयार रहना होगा ।

जहाँ दम उत्तन एक साथ रखे हों वहाँ मनासून हो ही जाती है । इसी प्रकार राघवमें भी कभी किसीकी किसीके साथ खटपट हो ही जाती है । एम समयमें निष्पक्ष विचार करके—यायपूर्वक उस झगड़को निपटा लेना चाहिये । दूध और छाछ के राघवसे दहीका कुण्डा भर गया और उससे खट्टा स्वाद आने लगा परन्तु विचारसे ज्यों ही उसे बिलोया, त्यों ही वहाँसे खट्टापन गायब हो गया—मजसून या घी बन गया । वह घी जो भोजनके लगभग सभी पदार्थोंमें काम आता है । न्यायके द्वारा जिनका झगडा शांत कर दिया जाता है, वे भी संगठनके लिए उपयोगी बन जाते हैं ।

विचारमें भी जय चार गुणोंका एका होता है—विद्या, विनय, धिक्के और विराम का, तब मनुष्योंकी तो बात ही क्या ?

ताशम बान्शाहसे भी “एका” बड़ा माना जाता है । गणित में आठ सट्टाके प्रारम्भमें एका लिखते हैं तो बादमें शून्यका

मूल्य भी दस गुना हा जाता है। दश शून्य का सौ गुना और तीस शून्यका हजार गुना, परन्तु प्रारम्भमें एका न हा तो हजार शून्योंका मूल्य भी बुद्ध नहीं हागा।

इसी प्रकार जिस बुद्धत्वमें समाप्तम राष्ट्रम एका नहीं हाता, दस का कोई मूल्य नहीं होता—उसे किमी कायम मकलता नहीं मिल सकती। एका विषयकी चाधी है। भारत पर चीनन आक्रमण किया तो मारे दशमें हलचल मच गई। उस पर विजय प्राप्त करनेके लिए एका किया गया। दश की सभी राजनैतिक पार्टियांन एक स्वरमें उस आक्रमणका विरोध किया। विचारोंमें मतभेद हाते हुए भी देशकी रक्षा के लिए सब मिलनुलकर एक हो गये।

शत्रु दशको यह अनुभव हो गया कि चुनावके समय “तू—मैं मैं” करके बुरा तरह लड़ने वाले लोग भी देशकी रक्षा के लिए तुरत एकताके सूत्रमें बंध जाते हैं। यह चीनना हा गया और उसने लड़ाई स्थगित कर दी। भारतके विरुद्ध उसने मठा—सन्धा प्रचार शुरू कर दिया, परन्तु दुनियाके सभी देशोंका विचार करनेका अवसर मिला। चीनका अनैतिक चीवन और भारतका नैतिक जवन मामल आया। अथ दशोंने नैतिकता के पक्षमें भारतका समर्थन किया।

विचार भेद या मतभेद तो पति पक्षमें मा हाता है—वह नुकसान नहीं करता। तुक्मान होता है—मतभेदमें। मतभेद अर्थात् वैर न होना चाहिये।

“वैरं मम न वेत्सि ॥”

मेरा किसीके साथ वैर नहीं है—द्वेष नहीं है। यह भावना ही सगठनके लिए पर्याप्त है।

भाषाभेदसे भी मनमें भेद रखना ठीक नहीं। आप, पानी और घाटरमें क्या कर रहे ? जिस भगवान्को जैन अग्निहोत्र कहते हैं उसीको हिन्दीमें ईश्वर, उर्दू में खुदा, इंग्लिशमें गॉड और अरबीमें अल्लाह कहते हैं। उपासनाकी पद्धतियोंमें भेद हो तो रहन दोजिये पर मनमें एक दूसरे धमानुयायीके प्रति प्रेम और हमदर्दी रहनी ही चाहिये। हिन्दुओंमें यदि मुसलमानोंके प्रति प्रेम और हमदर्दीकी भावना शुरूसे रहती तो धमके नाम पर भारतके दो दुम्ब क्या होते ? हिन्दुस्तान और पाकिस्तान क्यों बनते ? आपके मुसलमान कलके हरिजन ही तो हैं, जिनसे हिन्दू घृणा करते रहे—अछूत मानकर नफरत करते रहे। क्या पाकिस्तान का निमाण उसीका दुष्परिणाम नहीं है ?

जाति, सम्प्रदाय रंग राष्ट्र आदि के नाम पर आज तक खूब होली खेलते रहे हैं—एक दूसरे को नेस्त-नाबूद करने की-मिटाने की कोशिश करते रहे हैं परन्तु उसमें किसीको सफलता नहीं मिली। अब मिटाने का प्रयत्न छोड़कर इन सबको मिलान का प्रयत्न किया जाय—सब धम समभावी बन कर सम वय की साधना की जाय तो होली के बदले दीवाली आचाय।

सघप सगठन का शत्रु है—असहिष्णुता सगठन की बाधा है अशांति सगठन की नाशिका है असंतोष सगठन का रोड़ा

है, हम इन सबसे धचरर अपना माग बनाना है अथवा बने हुए माग पर चलना है ।

प्रत्येक सम्प्रदाय का मूल एक है और फल भी एक है—कारण एक है और काय भी एक है । किसी को रोटी पसन्द है, किसी को हलुआ किसी को पूड़ी अच्छी लगती है किसी को हवल रोटी और कोई कोई तो केवल परौठा ही पसन्द करते हैं परन्तु ये सारी वस्तुएँ बनती हैं—आटे से ही । सबका मूल एक है । सबका फल है—भूख बुझना । ठीक इसी प्रकार प्रत्येक सम्प्रदाय की उत्पत्ति अव्यवस्था, अशांति और दुःख के कारण हुई है और सब सम्प्रदायों का लक्ष्य है—सामूहिक रूपसे सुखवृद्धि । जसा कि कहा जाता है —

“सर्व भवतु सुखिन
सर्वे सव सतु निरामया ।
सर्वे भद्राणि परयतु
मा करिचद्द तभागभवेत् ॥

अथात् सब लोग सुखी हों—नीरोग हों (स्वस्थ हों)—सबका उन्नति हो—कोई दुःखी न हो ।

इस प्रकार जब सबका मूल एक है और फल भी एक है, तब द्वन्द्व क्यों हो ? घृणा क्यों हो ? संघर्ष क्यों हो ?

रोटी के लिए एक बार दो बिल्लियों में संघर्ष हुआ । न्याय करने के लिए हाथ में तराजू लेकर एक बन्दर आया और तरीके से सारी रोटी स्वयं खा गया । दोनों बिल्लियाँ बन्दर का मुँह ताकती रह गई परन्तु उनके पल्ले कुछ न पडा । यह

कहानी बचपन में आप लोगों ने भी सुनी होगी, परन्तु मुश्किल यही है कि कहानियों से हम शिक्षा नहीं लेते ।

इस कहानी का सार यह है कि दो के झगड़े में तीसरेका लाभ होता है । बाप बेट, भाई भाई अथवा दो मजहब वाले आपस में जरा सी बात पर तन जाते हैं । मामला सुप्रीम कोर्ट तक जाता है । दोनों पक्षों के लाखों रुपये वकीलों और बरिस्टरों की जेब में चले जाते हैं और तब वहाँ कुछ न्याय मिल जाता है फिर भी विपक्षी को सन्तोष नहीं होता । क्योंकि लाखों रुपये खर्च करने पर भी पराजय ही उसके पल्ले पड़ती है । इसकी अपेक्षा आपस में ही किसी तटस्थ गम्भीर समझदार सत्पुरुष को मध्यस्थ बनाकर झगड़ा निपटा लेने में—समझौता कर लेने में चतुराई है, अथवा विद्वानों की सी बेवकूफी कहलायगी ।

संगठन का तत्व समझने के लिये दो फलों का नाम याद रखिये—नारंगी और ग्वरबूजा । खरबूजे के ऊपर रेखाएँ होती हैं, परन्तु छिलका हटाने पर मालूम होता है कि भीतर का भाग संगठित है । इसके विपरीत नारंगी के ऊपर रेखाएँ नहीं होती, परन्तु छिलका हटाते ही पता लग जाता है कि उसके भीतर अलग अलग फाँके हैं । आपसो नारंगी की तरह नहीं, बल्कि खरबूजे की तरह संगठित बनना होगा—भन्नेही उपर-ऊपर से कुछ भेद बना रहे विलेन भेद विलकुल न हो ।

राग और द्वेष छोड़ कर संगठन में शामिल हूजिये । जरा जरा सी बातों के लिए लड़ाई-झगड़ न करके बड़ी बड़ी बातों

की ओर ध्यान दीजिये । तुच्छ बातों के लिए हृष्य बातों की उद्वेग न कीजिये । गौण बातों की मुख्यता दूसरे मुख्य बातों को गौण मानना मुख्यता है ।

क्या आप नहीं जानते कि टीकरी के लिये घड़ा फोड़ने वाला बबूक कहलाता है ? कीर्त्तियों के लिए खिला तोड़ने वाला ईंटों के लिए महल को मिट्टी में मिलाने वाला मूर्ख माना जाता है ।

अपने दिल को उदार बनाइये—कूपमंदूकता छोड़िये । हृदय का हॉल के समान विशाल बनाने की कोशिश कीजिये । जब तक दीवालें नहीं टूटेंगी, कोठरियाँ ही बनी रहेंगी । भेद-भाव की दीवालें तोड़ कर कोठरियाँ का हॉल बनाने दीजिये जिनमें सभी बैठने वालों को पूरा पूरा सुख मिले आराम मिले ।

एक दूसरे की निन्दा न करके प्रशंसा कीजिये । प्रशंसा तो गुणों की ही की जाती है, इसलिए दूसरों में गुणों का अन्वेषण कीजिये । एक महिम्न कुत्ते को देखकर जब सभी पांडव नाक-भौं सिकोड़ रहे थे, तभी श्रीकृष्ण ने उसकी प्रशंसा की थी । कहा था —“देखिये ! उस कुत्ते के दाँत कितने उज्ज्वल हैं ।” पांडवोंने इस उक्ति से गुणप्राप्ति सीखी । हम भी सीख लेनी चाहिये । संगठन को टिकाये रखने के लिए प्रत्येक मनुष्य में यह गुण जरूरी है । “मेरी भावना” शाणक कविता में यही तो कहा गया है —

‘गुणग्रहणका भाव रहे नित,

दृष्टि न क्षीणों पर जावे ॥’

बहुत से लोग इस कविता का नित्य पाठ करते हैं, परन्तु संगठित बनने के लिए उसके भावों को जीवन में उतारना चाहिये ।



७—चार भावनाएँ


भावुक मक्तो !

दान, शील, तप और भावना—इन चारों धमा गोंमेंसे चौथ अंगका—भावनाका महत्त्व ही सबसे अधिक है। यदि मनमें गुद भावनाकी सरिता उमड़ न रही हो तो दान शील और तप निष्फल हो जाते हैं।

इतना ही नहीं, धमके नाम पर किये जाने वाले सारे क्रिया-काण्ड भी गुद भावोंके अधाय में बेकार हो जाते हैं। जैसा कि कहा गया है —

“बड़ा धोता, बड़ा पोधा,
पढता पगड़ा बड़ा।
तिलक छाप भाव दिन
होता सदा बेकार है ॥”

—सूरजचन्द

वस्त्र पर साबुन कितना भी रगड़िये, उसका मैल जरा भी न मिटेगा, जब तक कि उसमें जलका उपयोग न किया जाय। ठीक इसी प्रकार ज्ञानके साथ भावनाका उपयोग होने पर ही आत्मशुद्धि हो सकेगी। आत्मा यदि मैला वस्त्र है तो ज्ञान — और भावना जल। इस उपमासे  सकता है।

एक संस्कृतने कविने कहा है —“भावना भवनाशिनी ॥”

अर्थात् भावना उत्कृष्ट हो तो भयका भ्रम मरणके चक्रका भी नाश हो जाता है ।

भावना उत्कृष्ट कैसे हो ? इसका उत्तर इस प्रश्नके उत्तर में समाया हुआ है कि धनकी प्राप्ति कैसे हो ? यदि हम धनकी जम्बरत हैं, तो हम धनदान के पास जायेंगे । यदि हमें विद्याकी आवश्यकता है तो हम विद्वान्के पास जायेंगे । ठीक इसी प्रकार यदि हम उत्कृष्ट भावना चाहिये तो हम भक्तोंके पास पहुँचेंगे—संतोंकी शरण जायेंगे—साधुओं की सगति करेंगे ।

यदि किसी शहरमें पहुँचने के लिए अपने गाँवसे हम बाहर निकल पड़ और बीचमें ही कहीं एक रास्तेसे निकले हुए अनेक रास्त दिव्याङ्क पड़ तो यह पता कैसे लगाय कि अमुक रास्ता ही हम अपने गन्तव्य स्थल तक पहुँचाने वाला है ?

इसके केवल दो उपाय हैं । पहला यह कि हम किसी जानकारको साथ रखें । दूसरा यह कि हम इतने पढ़े-लिखे हों कि मीलर पत्थर पर खुद हुए अक्षर पढ़ सकें और इस तरह स्वयं ही ठीक रास्ते का पता लगा लें ।

ठीक इसी प्रकार भावना को उत्कृष्ट बनानेके लिए या तो अनुभवियाँका अनुसरण करें अथवा धर्मग्रन्थों का स्वाध्याय करके स्वयं जान लें ।

प्राचीन भाषामें लिखे हुए धर्मग्रन्थोंका स्वाध्याय करके रहस्यका समझना सरसाधारणके धसकी बात नहीं है । इस-

लिए पहला उपाय ही सरल और अविक्रम उपादेय मालूम होता है।

अनुभवियोंकी महत्ता इस लोकोक्तिसे जानी जा सकती है —

‘जहाँ न पहुँचे रवि ।
 यहाँ पहुँचे कवि ॥
 जहाँ न पहुँचे कवि ।
 यहाँ पहुँचे अनुभवी ॥”

अनुभव अमृत र समान मधुर होता है उसमें द्वेषादिका जहर नहीं होता। किसीने ठीक ही तो कहा है —

“अनुभव अमृत जहाँ बहे।

यहाँ न कुछ भी जहर रहे ॥”

यदि रहे तो समझना चाहिये कि वहाँ सधा अनुभव नहीं है।

अनुभवियोंकी सगतिसे यदि हमारी भावनाएँ शुद्ध होजायँ तो ईर्ष्या द्वेष, वैर-विरोध आदि तुरन्त नष्ट हो जायँ। उन्नति के लिए प्रतिस्पर्द्धा रहे तो बुरी बात नहीं कही जा सकती पर तु ईर्ष्या मनमें पैदा नहीं होने देनी चाहिये। पन्चे दो दल बनाकर कबहुँ खेलते हैं। एक दल वाले दूसरे दल वालेका छे मारते हैं। दूसरे दल वाले भी मरते हैं (बाहर बैठ जाते हैं), फिर भी खेल पूरा होने पर पता लगता है कि किसीने

* कबहुँ एक दल वाला ‘कबहुँ कबहुँ’ बोलता रहा उसने कबहुँ कबहुँ की छाना है करते हैं।

किसीको नहीं मारा और न कोई मरा। सभी हँसते खेलते अपने अपने घरकी राह लेते हैं। यही बात जीवनम होनी चाहिये। जीवन भी एक खेल है। दुनिया एक रगमच है। सभी प्राणी अभिनेता हैं—खिलाड़ी हैं। हमें बिना ईर्ष्या द्वेष के सारे खेल खेलने चाहिये। खेलमें खेलक नियमों का सख्के पालन करना पडता है वैसे ही जीवनमें भी नैतिक नियमोंका पालन करना जरूरी है।

नियमोंका पालन भी भावनापूर्वक होना चाहिये। दिग्ग-वटी या ऊपर ऊपर तो नियमों का पालन किया जाय और भीतर भाव अशुद्ध हों तो भी कोई लाभ न होगा। भावना छिपी नहीं रहती। कभी न कभी प्रकट होकर पोल खोल ही देती है। इसलिए सतक और चिन्तित रहना पडता है। इस तरह कत्तव्यका पूरा पालन करने पर भी पूरा आनन्द नहीं आता। इससे तो यही अच्छा है कि हम निश्चितता के साथ अपने कत्तव्यका पालन करनेके लिए शुद्ध भावनाओंको हृदयमें स्थान दें और वास्तविक आनन्दका उपभोग करें।

भावनाएँ एव सस्कृत श्लोकके अनुसार चार हैं —

‘सत्त्वेषु मैत्री गुणेषु प्रमादम्,
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
मध्यस्थभाव विपरीतवृत्तौ,
सत्त्वा ममात्मा विदधानु देव ।’

कोई मत्त भगवान् से प्राथना करते हुए कहता है —

भगवन् ! मेरी आत्मा ये चार काम करे अथवा उसमें ये चार भावनाएँ बनी रहें —

(१) प्राणियों पर मित्रता (२) सज्जनोंको देख कर हय,
(३) दुखी जीवों पर दया, और (४) प्रतिकूल परिस्थितियोंमें मध्यस्थता ।

आइये, अब हम इन चारों भावनाओं पर कमश कुछ विस्तार से विचार करें ।

सबसे पहली भावना है—मित्रता । भ० महावीर की मित्रता सभी प्राणियोंसे थी । जैसा कि उन्होंने कहा है —

“मित्रीमे सव्वभूएसु ॥”

[मेरी सभी प्राणियोंसे मित्रता है]

हमें भी ऐसा ही करना है । यदि हमारो सबसे मित्रता होगी तो हम किसीको कष्ट न पहुँचायेंगे । जिसे कष्ट पहुँचाया जाता है वही हमारा शत्रु बन जाता है ।

हिन्दुओंके घम शास्त्रोंमें भी एक शब्दका प्रचुर प्रयोग पाया जाता है । वह क्या है ? अजातशत्रु ! जिसका कोई शत्रु नहीं पैदा हुआ उसे अजात शत्रु कहते हैं । हमें भी अजातशत्रु बननेकी साधना करना है ।

हमारी मित्रताका क्षेत्र विशाल होना चाहिये । वह न सिर्फ कुटुम्ब, समाज, प्रांत, राष्ट्र और विश्वके मानवों तक ही सीमित न रहे पशु पक्षियोंका भी उसमें समावेश हो जाय । प्रत्येक हमारा मित्र होना चाहिये अथवा

हमें मित्र मानना चाहिये; फिर भले ही वह अमीबा हो या इन्द्र—एकेन्द्रिय हा या पचेन्द्रिय—जस हो या स्थावर—अपना हो या पराया—दूरस्थ हो या निकटस्थ—हमारे स्वार्थ या साधक हो या बाधक—बच्चा हो या बूढ़ा—नर हो या नारी—अमीर हा या गरीब—अपग हो या स्वस्थ ।

एक बार एक माधुन अपने शिष्यका 'मिन्द्रामि दुक्कड' का मन्त्र मिलाया । जिसका आशय यह था कि यदि अपने द्वारा किसीका कोई अपराध हा जाय तो उससे क्षमा मांग लेनी चाहिये । शिष्यने बड़ी प्रसन्नताके साथ वह मन्त्र याद कर लिया । अपने गुरुजीके साथ विहार करता हुआ वह एक गाँवमें एक कुम्हारके घरके सामने वाले एक राम मन्दिरमें रात बितानेके लिए ठहर गया । प्रातःकाल आवश्यक कृत्योंसे निपटत ही उसे एक खेल सूझा । ऐसा खेल—जिसमें गुरुजीके मन्त्रकी परीक्षा भी हो सकती थी ।

घरके बाहर पड हुए कुम्हारके बस्तर्नाकी ओर उसने एक पत्थर फेंका । घडा मिट्टी का था । उसमें पत्थरकी चोट से छेद हो गया । कुम्हारको यह देख कर क्रोध आया, परन्तु वह उसे मन ही मन पा गया । शिष्यने दूसरा पत्थर फेंका और दूसरा घडा फोड दिया । इस बार कुम्हारने बडा हाथमे लठा लिया, परन्तु शिष्यके द्वारा 'मिन्द्रामि दुक्कड' का उच्चारण सुनते ही फिर शांत हो कर अपने फायम त मय हो गया ।

शिष्यने सोचा कि अब डरनेका क्या बात है । गुरुजीका

मंत्र अभाष ह । उसके प्रताप से कोई मेरा घाल घाँस नहीं कर सकता ।

उसने तीसरे पत्थरका प्रहार किया और तीसरा पड़ा भी फूट गया । इस बार कुम्हारसे न रहा गया । उसकी आँखें डाल डाल हाँ गइ । वह डडा लेकर उसे मारनेके लिए दौड़ा । शिष्यने वह बार उस मंत्रका जाप किया—जोरमे उसका उच्चारण किया किंतु कुम्हारने उसकी कोई पवाह नहीं की । शिष्यके पास पहुँचकर उसने आठ-दस प्रहार कर दिये—हटके । शिष्यके सिरसे मार चोटोंके गन बहने लगा । सिर पर किय गये अपन हर एक प्रहार के बान कुम्हार भी "मन्त्रामि दुक्कड" मंत्र बोलता रहा ।

अब शिष्यने भविष्यमे ऐसा न करने का सक्न्प किया, तभी कुम्हारने उसका पीछा छोडा ।

इस कथाका सन्देश यह है कि हमारी भावना यदि अशुद्ध हो तो दुनियाका कोई भी मंत्र हमें बचा नहीं सकता । मंत्रों को बिना समझ रटने या अपनेसे कोई सिद्धि प्राप्त नहीं होती । यदि नुकसान करना न छोड़ें और माफी मांगते जाय तो मंत्र तरह माफी नहीं मिल सकती ।

शत्रुता की भावनासे ही दूसरोंको नुकसान पहुँचाया जाता है । हम याद रखना चाहिये कि दुनियाके किसी एक प्राणीके प्रति या अब तक हमारे हृदयमे द्वेष है—शत्रुताकी भावना है तब तक हम आराधक नहीं, विराधक हैं ।

आराधकको चाहिये कि वह विराधक न बने साधक बन ।

दिल साफ करके कोई भी व्यक्ति माघक बन सकता है। परन्तु बरकी भावना जट्टी नहीं मिटती। प्रति वर्ष सयत्सरो प्रेम का स-देश लेकर आती है, पर कोई सुनने वाला नहीं मिलता। पर वर्षों तक ही क्यों? भावा तक—जमा-तर्गे तक चालू रहता है।

आजसे तीन हजार वर्ष पहले भी यही हाल था। कमठा-सुरने पाश्वनायके माघ घेर किया था जो दस जर्मों (भयों) तक चालू रहा। फिर आजकी तो बात ही क्या?

अनात शत्रु घने घिना यह घर रखनेकी मनोवृत्ति नष्ट न होगी और मैत्री भावकी मनमें प्रतिष्ठा न होगी। 'मेरी भावना' शीघ्र कविताम आता है —

‘मैत्रीभाव जगतर्म मेरा,

सब जीवोंसे नित्य रहे॥’

हर्म इस भावनाको जीवनमें उतारनेकी भरसक कोशिश करनी चाहिये। मित्रता अमृतके समान मधुर है और द्वेष जहर के समान कहुआ। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो मित्रता मिथ्री की तरह मीठी है और द्वेष नमककी तरह खारा।

यद्यपि नमक भी सफेद होता है और मिथ्री भी सफेद होती है, फिर भी मक्खियाँ मिथ्री पर ही बैठेंगी, नमक पर नहीं। ठीक इसी प्रकार द्वेषी भी मनुष्य है और प्रेमी (मित्र) भी मनुष्य ही है, फिर भी जनता द्वेषीक प्रति नहीं, प्रेमीके प्रति ही आकर्षित होगी। आप प्रेमी बनिये—सबके मित्र बनिये।

दूसरी है—प्रमोद भावना । सज्जनोंको इसका प्रमोद हुआ सीखिये । किसी भी महा मानव की प्रशंसा बहुत कमपक्ष से उसके गुण देखिये और केवल गुणकी ही प्रशंसा करिये । यह मत सोचिये कि वह हमारे देशके ही है या विदेशमें—हमारे सम्प्रदायका है या अन्तराष्ट्रियका—पुराने जमानेका है या आजका आदि ।

नीतिकार कहते हैं —

‘परो अपावन ठौरमें

कवन तनै न काय ॥’

सोना यदि अपवित्र स्थानमें—बापड़ने के घरमें पड़ा है तो भी कोई उसे नहीं छोड़ता । शत्रुके ही दोष अथवा गुण हैं तो उन्हें मत छोड़िये—अपनापन का श्रेय रखिये । दुःख अपनेम हों तो भी छोड़ दीजिये । शत्रुके गुणभीम हों तो भी मत लीजिये जिससे कि वे अन्तर्द्वेष न करें । नीतिकार कहते हैं —

“शत्रोरपि गुणा वाच्याः

दोषा वाक्शुभानि ॥”

शत्रुके भी गुण और गुरुके भी दोष ध्यान रखिये ।

प
रण
भी
दि-
णा

गुणिपु न च लिङ्ग,

न च यय ॥”

गुण ही पूज्य होते हैं, इसलिए गुणियोंके लिंगका और उनकी उम्र का विचार न करना चाहिये। यह नहीं सोचना चाहिये कि यह स्त्री है या पुरुष ? अथवा यह बच्चा है, बालक है किशोर है तरुण है प्रौढ़ है या वृद्ध ? प्रत्येक सद्गुणीकी प्रशंसा कीजिये। प्रत्येक सज्जनको देखकर प्रसन्नता प्रकट कीजिये। बस, यही प्रमोद भावना है।

तीसरी है—कारुण्य भावना।

दूसर दुःखा प्राणियोंके दुःख देखकर द्रवित हो जाना करुणा है। कहा है —

“दुःखियोंके दुःखका दग्ध

दया दिग्गलार्थे ।

छुटे कर्मणाकी धार

अश्रु परसार्थे ॥”

—मथनमहाशास्त्र

किसी विचारकने कहा है —

‘पापसे घृणा करो, पापीसे नहीं। उद्भूत ठीक है। मैले वस्त्रको देख कर हम मैलसे ही घृणा करनी चाहिये वस्त्रसे नहीं। मैले वस्त्र को फाड़नेसे मैल नष्ट नहीं होता, तरीक से उसका मैल निकालना पड़ता है। वैसे ही पापीको मार डालने से वह सुधर नहीं जाता, तरीकेसे उसका हृदय परिवर्तन करना पड़ता है।

त्रिमूर्ति दिल कोमल पाता है वह दुःखियों की दुःखशासक
 करने किता गहो रहता। मन्ताकि हृदय इसीलिए मन्त्रमय
 मन्त कोमल भावा पाता है, किन्तु इस उपमा की मन्त
 हृन्मादामने सूय मयल ली है। वनक शब्द य ह —

“मन्त हृदय नवनीत ममाना।

बहा कविन वै बहद् न जाना ॥

—रामचरितमानम

मन्तों का हृदय मन्त्रमय क समाप्त होता है एसा कवियों
 ने कहा परन्तु है पर उन्हें कहता आया गहा। क्योंकि—

“निप परिताप द्रव्य नवनीता।

पर दुःख द्रव्य सा मन्त पुनीता ॥”

मन्त्रमय ता अपन ऊपर जलन (अग्नि का ताप) होने पर
 ही द्रवित होता है, परन्तु पवित्र मन्त तो दूसरों के सन्ताप
 (दुःख) से द्रवित होते हैं।

महावीर स्वामी अहिंसा के और गौतम बुद्ध करुणा के
 अवतार मान जाते हैं। अहिंसा और करुणा में काह विशेष
 भेद नहीं है। अहिंसा काय है और करुणा कारण। हम कारण
 की अपनाकर काय तक पहुँचना है। ये दोनों महापुरुष भी
 मनुष्य थे और हम भी मनुष्य हैं। हमें यथाशक्ति इनके प-
 चित्तों पर चलना है। चलना तभी सम्भव है, जब हम करुणा
 की भावना को हृदयगत कर लें।

बौधी है—माध्यम्य भावना। सुख और दुःख में मन्त्रमय
 राजना ही आशय है।

“दुख मे तड़पें नहैं,

सुख मे फूलें नही ।

प्राण जायें मगर,

धम भूलें नही ॥”

—गीताचर्यक

ससार में सभी दिन एक से नहीं घीतत । कभी सुख की अधिकता रहती है और कभी दुख की । कहा भी है —

‘कभी सुख है, कभी दुख है

इसी का नाम दुनिया है ॥

रामचन्द्रजी ने जब यह सुना कि मेरा राज्याभिषेक होने वाला है, तब उन्हें कोई हृष नहीं हुआ-न घमण्ड हुआ और थोड़ी ही देर बाद जब यह सुना कि मेरा १४ वष के लिए धनघास होने वाला है तब भी कोई विपाद नहीं हुआ न शोक हुआ । दोनों अवस्थाओं में उनके चेहरे की कान्ति श्यों की त्यों बनी रही ।

सुख दुख की तरह लाभ-हानि, यश अपयश, निन्दा-स्तुति आदि से भी क्षुब्ध न होना साधक का कतव्य है । जीत या हार की पर्वाह न करके हमें सीधे सच्चे मार्ग पर चलते रहना चाहिये । इतना ही क्यों ? यदि हमारा लक्ष्य ठीक है, तो हमें जीवन मरण से भी विरक्त रहना होगा । जीवन के प्रति आसक्ति न हो और मृत्यु का भय न हो, तभी हमें अपना लक्ष्य प्राप्त करने में सहूलियत होगी ।

भारत को स्वतंत्र करने का पवित्र लक्ष्य सामने रख कर गांधीजी चले तो उन्हें गालिया भी खानी पड़ी थीं, परंतु इनसे वे क्षुब्ध न हुए और अंत में उन्हें श्राप हो ही गई।

आध्यात्मिक मार्ग के पथिक का भी यसा हा एक लक्ष्य होता है—आत्मा को स्वतंत्र करना। अन्वेषण अग्रियों के अधीन था और आत्मा कर्मों के अधीन है। जैसे भारतवासी ब्रिटिश-सरकार के गुलाम बन गए थे वैसे ही प्रत्येक ससारी जीव कर्म सरकार का गुलाम है। हमें यह गुलामी मिटाकर आजादी हासिल करनी है। जैसे अग्रियों की गुलामी नष्ट करने के लिए हमें पड़ी बड़ा कुदैनियां करनी पड़ी थी वैसे ही कर्मों की परतंत्रता नष्ट करने के लिए प्रत्येक आत्मा को बड़ा स बड़ा त्याग करना पड़ना।

अनाथी मुनि ने ऐसा ही तो किया था। इनके शरीर में जब मयकर बीमारियां पैदा हो गईं और कृम्यागण राने घोंटे के सिवाय और कुछ न कर सक, रोगों के दुस्र का हिस्सा न बंट सक और न कोई उपचार हा कर सक, लगातार त महीने तक बीमारियों को वेदना तर को अकेले ही भोगनी पड़ी तब उनकी आत्मा बुद्धि-विवेक जागृत हो उठोने समक लिया कि कर्मों का परतंत्रता के कारण रोग पैदा होते हैं इस लिए जब बीमारियों को मिटा

कर्मों से आत्म...

जब छ मजान न बाद अनाथी मुनि स्वस्थ हा गये और कुटम्बी लोग सोन चाँदी के वर्तनों में पक्वान्न परोसने लगे, तब बिना कुटम्बीये पिये ही व मुक्ति का लक्ष्य बनाकर घर से चल पड ।

जगल में एक मयासी के बेप में जब ध्यानमग्न तरण सुन्दर अनाथी मुनि को महागज श्रेणिक ने देखा और उन्हें एक अनाथ समझ कर अपने महल में आश्रय देने की इच्छा प्रकट की, तब अनाथी मुनि ने स्पष्ट कहा — 'राजन् । आप स्वयं भी अनाथ हैं । जा अनाथ हैं वह दूसरे का नाथ (रक्षक या आश्रयदाता) कैसे बन सकता है ? प्रत्येक प्राणी अनाथ है क्योंकि इस दुनिया में उसका कोई रक्षक नहीं है । वह स्वयं अपना नाथ बन सकता है—यदि बनना चाहे तो ।'

मुनिके कथनका आशय समझकर महाराज श्रेणिक उनकी मन ही मन प्रशंसा करते हुए वात्सल्य करके चले गये ।

तात्पर्य यह है कि आत्मा को कर्मों से मुक्त करनेके लिए जैसे अनाथी मुनिने पन्ना गों से भरी हुई सोने चाँदी की चाटियोंका—घरका—परिवार का—महागज श्रेणिकके द्वारा दिये जाने वाले आश्रयके प्रलोभनका त्याग कर दिया, वैसे ही त्याग करनेके लिए हमें भी सदा कमर कस कर तैयार रहना होगा । प्रभुसे एक कविक शब्दोंमें यही प्रार्थना करनी होगा —

हे मम उकीरी नव निम्ने

भा लाग किशुकी अपेक्षा गुलाबकी अधिक पसन्द करते हैं। क्यों ? एवम सुगंध होती है, दूसरेम नहीं। आकर्षण गुण रही सुगंधम हाता है, सुन्दरतामें नहीं।

इन चारों भावनाओंके द्वारा आप भी आत्मामें सुगंध पैदा करके गुलाबके फूल बन सकते हैं, अन्यथा “निर्गंधा इव किशुका” आपका कोई नहीं पूछेगा।

मस्कृतम एक कहावत है —

‘अगच्छन् वैनतेयोऽपि
पदमेकं गच्छति ॥’

यदि न चले तो गरुड़ भी एक कदम आगे नहीं बढ़ सकता। आगे बढ़ ना है तो चलिये—अपने जीवनम परिवर्तन कीजिये—सुधार कीजिये। बिना आचरणके हजारों उपदेशोंकी अपत्या आचरण वाला एक उपदेश वही अच्छा है।

धमकी—कत्तव्यकी—शुद्ध भावनाओंकी बातें कहने वालों की भी कमी नहीं है और सुनने वालोंकी भी कमी नहीं है। कमी है बजल करने वालोंकी।

एक ऋविन प्राचीन हिन्दीमें ठीक ही कहा है —

“कहता कहता थकी जवान।
तो भी न आयो हिरदै ज्ञान ॥
सुणी सुणीने थाक्या कान।
तो भी न आयो मनमे ज्ञान ॥”

मूलके बच्चे प्रति वष एक एक कक्षा पास करते हैं, परन्तु हमलोग नहीं करते। दस वर्षम घालक मेट्रिक पास कर लेते

ई, परन्तु इस घण्टे हम एक सामायिक भी पास नहीं कर पाए। कितनी विचित्र बात है ? उस वक़्त पहले हमारी जो धार्मिक अवस्था थी, आज भी यदि वही रही—उसमें कोई परिवर्तन परिवर्द्धन नहीं हुआ तो हमारा विकास कैसे होगा ?

पहले सामायिकर्म गुस्ता आना था आज नहीं आता तो अच्छा है—एक बक्षा आपने पास कर ली। इसी प्रकार धीरे धीरे आगे बढ़िये—जीवनको पूर्ण निष्पाप बनायें और धार भावनाओंके द्वारा अतस्तल को पवित्र करके उसमें हम की सुगन्ध भर दीजिये। इत्यल



